श्रीमते मध्वाचार्याय नमः

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

* श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यम् *

हा गौराङ्ग ! दयानिधे ! गुणनिधे ! हा प्रेमसम्पन्निधे !
हा सौन्दर्यनिधे ! क्षमाजलनिधे ! वात्सल्यवारांनिधे ! ।
हे गाम्भीर्यनिधे ! सुधैर्यजलधे ! हे भक्तवाञ्छानिधे !
दीनोद्धारपरावतार ! भगवन् ! दीने मयि प्रीयताम् ॥

(श्रीसख्य-सुधाकरः, २०)

टीकाकारः

श्रीवनमालिदासशास्त्री

॥ सङ्गणकसंस्करणं साधुचरणरजोऽभिलाषिणा हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

श्रीमन्माध्व-गौडेश्वरौ विजयेतेतमाम्

महाकवि-गोस्वामि-श्रीनन्दकिशोरचन्द्र-प्रणीतम्

* श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यम् *

प्रेमोल्लास-प्रकाशिका-टीकाकारः

निखिलशास्त्र-पारावार-पारदृश्व-सख्यावताराऽष्टोत्तरशतस्वामि-श्रीकृष्णानन्ददासजीमहाराजशिष्यः, श्रीगोपालचम्पू-श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू-श्रीपद्यावली-श्रीभक्तिग्रन्थमाला-श्रीस्तवरत्ननिधि-प्रभृति-प्राचीनतमग्रन्थानां सरस-टीकाकारः, भारतसरकारतो लब्ध-कालिदासपुरस्कारः, श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्य-श्रीहरिप्रेष्ठ-महाकाव्य-प्रभृति-विविधकाव्यकारः,

महाकविः श्रीवनमालिदासशास्त्री

स एव प्रकाशकः संशोधकश्च

प्रथमावृत्तिः ५०० | अक्षयतृतीया वि० सं० २०३८ | निछावर ३.२५

॥ सङ्गणकसंस्करणं साधुचरणरजोऽभिलाषिणा हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

अनुवादकीय–वक्तव्य

श्रीकृष्णचन्द्र-प्रारम्भां श्रीमध्वाचार्य-मध्यमाम् ।

अद्वैत-कृष्णचैतन्य-नित्यानन्द-विशेषिताम् ।।

अस्मदाचार्य-पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

अनादिकाल से परिवर्तनशील इस संसार में आने और जानेवालों की तो कमी नहीं है, परन्तु जो जाने के पहले अपनी सुकृतियों की छाप छोड़कर जाते है उन्हीं नरपुङ्गवों का आना जाना सफल है, एक बात। दूसरी बात यह है कि, खाने, पीने, सोने, धन कमाने और कीर्तिलाभ आदि की पार्थिव प्रवृत्तियाँ तो प्रायः सभी में न्यूनाधिक रूप में होती हैं परन्तु पारमार्थिक निःस्वार्थ वृत्ति से मुक्त होकर जो जन अपने जीवन में ऐसी कुछ सत्सेवा कर जाते हैं वे ही "कीर्तिर्यस्य स जीवति" इस न्याय के अनुसार सदा अमर कहाते हैं। ऐसे ही पारमार्थिक जगत् के अन्यतम महानुभाव रसिक कविकुल चूड़ामणि श्रीनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी जी महाराज हुए हैं। जिनके द्वारा विरचित "श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्य" आपके करकमलों में सरस एवं सरल हिन्दी भाषा टीका सहित विराजमान है। इनका प्रशस्त परिचय तो आप सुनेंगे ही, परन्तु पहले उन कलियुगपावन-स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतार भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का भी थोड़ा सा परिचय अवश्य प्राप्त कर लें, जिनकी अहैतुकी कृपा से ऐसे महानुभावों का तथा ऐसे ग्रन्थरत्नों का प्रादुर्भाव होता रहता है।

निखिलरसामृतमूर्ति व्रजेन्द्रनन्दन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के मन में एकदिन यह विचार हुआ कि (१) श्रीमती राधिकाजी के अलौकिक प्रेम की महिमा कैसी है, (२) और श्रीमती राधिकाजी जिसका आस्वादन करती हैं वह मेरी अद्भुत महिमा कैसी है, एवं (३) मेरे अनुभव से इन श्रीमती राधिकाजी को कौनसा अनिर्वचनीय सुख मिलता है? बस इन तीन अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लोभ से श्रीराधिकाजी के भाव एवं

कान्ति से संमिलित होकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के रूप में नवद्वीप-अन्तर्द्वीप "श्रीमायापुर" धाम (जिला नदिया पश्चिम बङ्गाल) में पं० श्रीजगन्नाथ मिश्र की धर्मपत्नी श्रीशचीदेवी के हृदयप्राङ्गण से शकाब्द १४०७ विक्रमाब्द १५४२ बङ्गाब्द ८९२ तारीख २१ फाल्गुन खिस्ताब्द १४८६, १८ फरवरी में चन्द्रग्रहण एवं शनिवारयुक्त फाल्गुन की पूर्णिमा के सायंकाल में प्रगट हुए थे। तदनन्तर पण्डितराज श्रीगंगादासजी से सकल शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन किया। मध्वसम्प्रदायान्तर्गत श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद के शिष्य श्रीईश्वरपुरीपाद से गया क्षेत्र में दशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र की दीक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त भक्त मण्डली के साथ नवद्वीप में श्रीहरिनाम संकीर्तन का प्रचार किया। फिर २४ वर्ष की अवस्था में श्रीकेशवभारती जी से संन्यास ग्रहण कर ६ वर्ष तक दक्षिण एवं श्रीवृन्दावन की यात्रा करके श्रीहरिनाम संकीर्तन द्वारा लाखों जीवों का उद्धार कर, पुनः १८ वर्ष श्रीजगन्नाथमिश्रजी के नीलाचल धाम में अचल वास करके श्रीकृष्ण-भक्ति के प्रेम प्रवाह से विश्व को ही आप्लावित कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु जी के भावमय चरित्र के चित्रण का, श्रीमीरा जी का भी एक पद्य कण्ठ करने योग्य है, देखिये—

अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जगको यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी ॥१॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुँड़ाय डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ॥२॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधैं जाको पाँम।
श्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाम ॥३॥
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसे।
गौर कृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसे ॥४॥

ग्रन्थकार का परिचय—

स जयति नन्दकिशोरः, श्रीजयदेववंशजातो यः।
यत्काव्यं मधुवर्षि, प्रेमोल्लासं विभर्त्यपि च ॥१॥

रसिक कविवर्य उन श्रीनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी जी महाराज की जयजयकार हो कि, जिनका प्रादुर्भाव निखिल कविकुल चक्रवर्ती "गीत-गोविन्द"–कार श्रीजयदेव कवि जू के वंश में हुआ है। जिनका प्रत्येक काव्य मधु की वर्षा करने वाला है, तथा भगवत्सम्बन्धी प्रेमोल्लास का पालन-पोषण करने वाला है।

माध्वमत-मार्तण्ड गौरचरणानुरागी श्रीनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी जी का प्रादुर्भाव, विक्रम सं० १८७० में मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को श्रीधाम वृन्दावन में हुआ था। आपके पिताजी का नाम गोस्वामी श्रीचुन्नीलाल जो एवं माताजी का नाम श्रीदेवकी देवी था। आप गीतगोविन्दकर्त्ता श्रीजयदेव कवि से चौवीसवीं पीढ़ी एवं आदि वाणीकार श्रीरामरायप्रभु से ग्यारहवीं पीढ़ी में अवतीर्ण हुए थे।

इनके लघु भ्राता "श्रीव्रजकिशोरजी" महाराज थे। जिनको राज्य भरतपुर ने बहुत कुछ सम्मानित किया था। गो० श्रीनन्दकिशोरचन्द्र जी बड़े कष्ट से पाठशाला जाते। वहाँ भी मित्र मण्डली के साथ क्रीडातंत्र रहते लेकिन ७ वर्ष की ही अवस्था में श्रीमद्भागवत की रसीली कथा कहते थे। यहाँ तक विशेषता थी कि, महात्माजन घर आकर इनकी माताजी से पूछते कि, लालाजी कहाँ हैं, वे कहतीं यहाँ ही कहीं होंगे बस फेरतो वे घरसे आकर रास्ते में कहीं भी पाते, मुख-प्रक्षालन-करा, हाथ पांव धोके सिंहासन पर बैठाते, बिना पुस्तक ही हर एक प्रसंग ऐसा जमाते, जिसे सुनकर सब मनुष्य कृत-कृत्य हो कहते, भाई इनमें तो कोई दैवी शक्ति हैं। कथा समाप्त होने पर महात्मागण अपनी-अपनी माला झोली इनके मस्तक पर रखते और कहते कि आपकी भेट देने को तो हमारे समीप कुछ नहीं, किन्तु जो भजन किया है वह आपके निमित्त देते हैं। यह कह कर अत्यन्त हर्षित होते लेकिन इनके पिताजी क्रीडासक्त होने के कारण इनसे विशेष अप्रसन्न रहते थे। एक दिन इनके अध्यापक जी ने इनके पिताजी से कहा कि, श्रीगो० जी इनको आप यहाँ ही पढ़ाया करें तो अच्छा हो क्योंकि, 'पाठशाला में जाकर ये और बालकों को भी नहीं पढ़ने देते,' इतना कह पं० जी तो चले गये।

बाद में 'श्रीनन्दकिशोर जी' को बुलाकर पिताजी ने कहा कि, भाई तुम्हारी क्या इच्छा है ? सो कहो, तुम्हारे सदृश तो हमारे कुल में अभी तक कोई हुआ नहीं क्या वंश का नाम डुबा दोगे ?" इतना कह भर्त्सना के साथ ताड़न भी किया। रोते हुए घर में गये वहाँ पर माताजी को भी कुपित देखा, तब तो वहाँ से भी निकल कर समीपवर्ती सूर्यघाट पर आकर रोने लगे। इतने ही में पूज्यपाद साधुवर्य्य श्री १०८ श्री संकर्षणदास जी आ निकले। उनने पूछा बच्चा क्यों रोते हो ? बहुत कुछ पूछनेपर सब हाल कहा, सुनकर महात्माजी ने कहा चलो हम चलें तुम्हारे पिता जी कहाँ हैं। साथ में घर आकर महात्माजी ने कहा महाराज गोस्वामी जी ! आप इनको मारा न करें। आप को खबर नहीं कि, ये आपके कुलचन्द्र होंगे। गोस्वामी जी हँसकर बोले "यदि आप जैसे महात्माओं की कृपा हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं" यह कहते में ही महात्मा जी ने अपनी कनिष्ठिका अंगुली से "श्रीनन्दकिशोरजी" की जिह्वा पर कुछ मंत्र सा लिखा। बाद में नमस्कार कर चले गये। लब तो घर में सब कोई इनके साथ बड़ा प्रेम करने लगे। इनके एक पितृव्य (चाचा) श्रीतुलसीराम गोस्वामी कालीयदह पर अनुदिन भजन करते उनको एक समय रात्रि में स्वप्न हुआ "व्यासनन्दन श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि, मुझे कालीयदह से निकालो मैं तुम्हारे घर में "श्रीनन्द-किशोरजी" को दर्शन देने के लिये आया हूँ वे मेरे बड़े भक्त हैं, यह प्रभात ही सब घर वालों से कहा और साथ ले कालीयदह पर गये गो० श्रीतुलसी-रामजी श्रीयमुनाजी के मध्य में गये और वह स्वप्न मनोरथ रूपा मूर्ति मिली, उसका उद्धार कर प्रतिष्ठा की, उन्हीं श्रीशुकदेवजी की सेवा में "श्रीनन्दकिशोरचन्द्रजी" ने अति दृढ़ता की और परमहंस परिब्राजकाचार्य श्रीशुकमुनि की कृपा से श्रीमहाराज ने श्रीमद्भागवत पुराण के मुख्यतम वक्ताओं में नाम पाया। वही प्रतिष्ठित अद्भुत चमत्कारी श्रीशुकदेवजी की मूर्ति आजतक विराजमान है। उस समय श्री श्रीमाध्वमताचार्य श्री १०८ श्रीनित्यानन्द महाप्रभु के वंशधर श्री १०८ श्रीपूर्णानन्द जी महाराज से संस्कार दीक्षा विधि प्राप्त की तथा श्रीमुख्योपाध्याय मुकर्जी से षट्दर्शन का दर्शन किया। एक समय श्रीमहाराज एक सेवक के द्वारा बुलाये हुए काशी जी को गये। वहाँ सप्ताह यज्ञ का आरम्भ हुआ, बड़ी भारी भीड़ होने लगी, कथा की विशेष प्रतिष्ठा देख वहाँ के पंडितों ने बिचारा, बड़ा कोलाहल है, देखें तो क्या है ? देखा तो श्रीमहाराजजी कथा बांचते हैं। कथा की समाप्ति होनेपर चारों तरफ से पंडित जुट गये और व्याकरण की

फक्किका तथा न्याय की अवच्छेदका-वच्छिन्न बोलने लगे और कहने लगे श्रीमद्भागवत बांचने में क्या है ? श्रीमहाराजजी ने सानुनय उत्तर दिया कि आप में से जो कोई बांचना चाहें बाँचे। अच्छा कह आपस में लड़ाभिड़ी करने लगे, नहीं नहीं हम अच्ची कथा कहेंगे, इस तरह कहेंगे, इस तरह बहुत देर बाद सर्वसम्मति से मुख्यतम एक शास्त्री बैठे, कथा बांचने को और श्लोक पढ़कर शब्द सिद्धि करने लगे, अबतो श्रोतागण ने भी चलने की शरण ली, कहाँ तो चार पांच हजार श्रोता थे कहाँ एक भी न रहा; यह देख श्रीमहाराज ने षट्शास्त्री जी से कहा पं० जी पकरिये यह चले, पं०जी व्यासगद्दी से उतरकर कहने लगे ये श्रोता मूर्ख हैं तब तो श्रीमहाराज ने कहा पं० जी मूर्ख का ही समझाना तो कठिन कार्य है। इसपर सब कुढ़ भुन गये और दूसरे दिन पहिले ही आकर श्रीमद्भागवत के ५-६-७ तीन स्कन्ध निकाल, सिंहासन के पीछे बैठ गये, बाद में श्रीमहाराजजी आये और मंगला-चरण कर पाठ आरम्भ करने को ज्यों ही पुस्तक खोलते हैं तो क्या देखते हैं कि, तीसरे दिन के पाठ का लोप है। अस्तु श्रीशुकदेवजी की ऐसी अद्भुत कृपा हुई कि उन पंडितों के देखते-देखते श्रीमहाराजजी ने सुललित कंठ से तीन घन्टे में तीसरी मंजिल का समस्त पाठ कंठस्थ किया और कथा भी कही सुनकर सबों ने हाथ जोरे। और पंडितों ने कहा कि श्रीमहाराज जी आप धन्य हैं। आप तो कोई भगवत् अंश हैं और कहा—

"विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पंचभिर्ब्रह्मन् ! शोभते भगवान् भवान्" ॥

यह पद्य उन विद्वानों ने श्रीमहाराज को प्रसन्न करने के लिए रचना करके दिया। बाद सानन्द कथा समाप्ति कर श्रीवृन्दावन धाम में आये इस तरह श्री वाराणसी का विवरण है उस समय अवस्था १५ वर्ष की थी।

इसके बाद सं १९८६ में श्रीमधुपुरी (मथुरा) में अनेक सेवकों की विशेष प्रार्थना से श्रीकृष्ण-गङ्गा पर कथा होती रही। हजारों देशी विदेशी कथामृत रसास्वाद करते थे। यह एक वर्ष की पारायण हुई। तदनन्तर श्रीधाम वृन्दावन में श्रीशुक मुनि के वार्षिकोत्सव की श्रीकालीयदह पर दशम स्कन्ध की कथा प्रारम्भ हुई उसी समय दर्शन यात्रा के निमित्त श्रीमान् धर्मशाली दतिया नरेश "श्रीविजयसिंहबहादुरजी" आये थे। एक दिन वे अकस्मात् श्रीवृन्दावनधाम की पञ्चकोशी प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करते आ रहे थे। श्रीमहाराज की कथा सुनते ही चकित हो गये, सदस्यों को साथ ले चल दिये और आप पंडाजी से बोले महाराज ! और कहाँ कथा

होती हैं। पंडा जी ने कहा सरकार यहां श्रीनन्दकुमार भट्ट जी और कथा बांचते हैं। राजा वहाँ भी गये सुनकर चले आये। दूसरे दिन श्रीयमुना स्नान से आते भट्ट जी से भेंट हुई नमस्कार कर राजा ने प्रश्न किया श्री-महाराज ! आप कथा में बड़े हैं या वे पंडित जी। भट्टजी ने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया राजासाहेब ! उनको नाम नन्दकिशोर है मेरो नाम नन्दकुमार हैं जितनो भेद हो सब कोई समझिये। सुनकर सब लोग हँस पड़े। बाद में श्री दतियानरेश जी "श्रीनन्दकिशोरचन्द्रजी" के मकान पर आये। और बोले कि कृपानाथ ! आप दतिया चलें तो अच्छा हो, बहुत कहने पर जाना स्वीकार किया। और शुभ मुहूर्त में दयाराम व्रजवासी को साथ ले पधारे रास्ते में श्रीगंगा-तट सोरों के घाट पर राजा ने २००००) का सुवर्ण गिरि बनवाकर श्रीमहाराजसे कहा पं०जी संकल्प बोलिये और लीजिये। श्रीमहा-राज ने तत्काल उत्तर दिया राजेन्द्र ! यह तो गंगा-पुत्रों को दीजिये उन्हीं का भाग हैं' यह सुन राजा विस्मित हुआ और कई भाग कर गंगा-पुत्रों को दिया। बाद दतिया को गये, वहां जाकर श्रीमद्भागवत महापुराण प्रारम्भ हुआ। पहिले ही "जन्मादि श्लोक की ३ महीना व्याख्या हुई। "श्रीविजय-सिंह जी" ने कहा श्रीमहाराज जी ! इस तरह तो हमारा जन्म व्यतीत हो जायेगा लेकिन कथा समाप्ति न होगी, तब-तो एक मास की पारायण कही और श्रीश्रीविजयगोविन्द जी के मन्दिर में १ महीना तक 'श्रीगोपालचम्पू' की कथा हुई; कथा की समाप्ति में "श्रीविजयसिंह" बहादुर ने ढाई लाख की आज्ञा खजांची को दी। उसी समय मंत्री बोला सरकार पण्डित जी महाराज को फिर कभी बुलाना है या नहीं। राजा ने कहा बुलाना तो अवश्य है। फिर भी मन्त्री बोला तो सरकार समझ लीजिये ?

राजा—अच्छा भाई इस तरह सलाह कर, सवा लक्ष का चौंतरा बनाकर "श्रीमन्नन्दकिशोरचन्द्रजी" को उस पर स्थापन कर "श्रीमान्-विजयसिंहबहादुर" ने सस्त्रीक सुवर्ण थाल हाथ में ले श्रीमद्भागवत महा-पुराण का तथा श्रीमहाराज का चरणार्चन किया। साथ में दो हाथी चार नौकर और समस्त राष्ट्रीय उपस्कर दे श्रीमहाराज को दतिया से सहर्ष बिदा किया ! मधुपुरी में आके कुछ सुवर्ण तथा एक हाथी "श्रीनन्दकिशोर-चन्द्रजी" महाराज ने अपने गङ्गाधर पुरोहित को दान कर दिया। बाद में श्रीवृन्दावन आये और फिर आपने श्रीशुकदेवजी का मन्दिर बनवाया उसमें सुगन्धित पुष्पों की पूजार्थ विशेष आवश्यकता जान, बनबिहार स्थल के निकट श्रीशुकोद्यान बनवाया। बाद विवाह होने पर आतमवत् युगलकुमार

उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ "श्रीश्रीमदनमोहनजी दूसरे "श्रीश्रीसोहनलालजी" महाराज, इन दोनों पुत्रों का शुभ विवाहोत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ कर श्रीशुकदेव पादपद्म की अटल भक्ति की। और श्रीशुकदेवजी की प्रसन्नता के लिये "श्रीशुकदूत" महाकाव्य, बनाया, श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के सेवार्थ "श्रीगौरप्रेमोल्लसकाव्य" बनाया; "श्रीगोविन्द-गुणार्णव नाटक" "श्रीराधा-विहारचम्पू" श्रीमद्भागवतदर्पणकाव्य "श्रीरासपञ्चाध्यायी शिखरिणी छन्दों में बनाकर श्रीमद्भागवत की "बालबोधिनी" टीका रची। तथा श्रीयमुनाष्टक, श्रीराधारमणाष्टक, श्रीगोविन्दाष्टक, श्रीसंस्कृत-द्वादश-मास प्रबन्ध, ये समस्त ग्रन्थ बनाकर श्रीराधारमणचरण प्राप्ति कामना से श्रीशुकोद्यान में श्रीमद्भागवत-पारायण आरम्भ किया। इस कथा में बड़े-बड़े महानुभाव श्रीराधारमण सेवाधिकारी गो० श्रीगोपीलाल जी श्रीगुण-मञ्जरीदास जी आदि अनेक सद्वृन्द श्रीमद्भागवत रूप अमृत फल का अलौकिक रसास्वाद करते थे। यह अन्तिम कथा तीन वर्ष में समाप्त हुई और सम्वत् १९१२ में भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष की दशवीं तिथि को, परमप्रसिद्ध श्रीमद्भागवत के वक्ता श्रीमाध्वमतमार्तण्ड श्री गो० "नन्द-किशोरचन्द्र जी" महाराज श्रीनिकुञ्जधाम पधारे। इस समय तो उनके यश के आधार रूप, उनके ग्रन्थ ही हो सके हैं कि, वे कितने अलौकिक विद्वान् थे? श्रीराधारमण जी के सेवाधिकारी गो० श्रीराधाचरणजी ने स्वरचित "नवभक्तमाल" ग्रन्थ में लिखा है :—

❀ षट्पदीछन्दः ❀

श्रीकालीयदह-निकट व्याससुत दर्शन दीयौ।
भावअर्थगम्भीर हृदयपरिपूरण कीयौ॥
करिप्रबन्ध कल्पना कथाकी प्रथा चलाई।
वशीकरण सम कियो चित्त श्रोत्ता समुदाई॥
भयौ न कोई होयगो, वक्ता त्रिभुवनरन्ध्रमा।
"श्रीनन्दकिशोर" पूरण कला-भये "भागवतचन्द्रमा" ॥१॥

ग्रन्थकार का यह परिचय, उन्हीं के प्रपौत्र, भारतीभूषण आचार्य श्रीयमुनावल्लभ जी महाराज के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

भारत-सरकारद्वारा-लब्धकालिदास-पुरस्काराणां

महाकवि-श्रीवनमालिदासशास्त्रिणां संक्षिप्तः परिचयः

कविरेष आबाल्यं हरिभक्तः श्रीकृष्णे मित्रभावेनाऽनुरक्तः परमविरक्त-स्तत एव प्रवृत्तिमार्गं नानुसृतः श्रीमध्वमार्गमनुगतश्च । सरलप्रकृतिः सौम्या-कृतिः कृतिभिरनुरञ्जित-सर्वसज्जनः कविजनमात्र-कृतिषु गुणग्रहणपरः सूक्ति-सञ्चयपरः परवचःश्लाघासु नो वाचंयमश्च सम्प्रति गतचतुःषष्टिवर्षश्च ।

शर्षिनन्देन्दुमिते च वर्षे १९७५ निजप्रादुर्भावेन हरियाणा-प्रदेश-मलंचकार, चकार च कृतार्थं हिसारप्रान्तान्तर्वर्तिनं वासनामकं ग्रामं, जँजोरीनाम्नीं जननीं जननीतिविदं तुलारामाभिधानं जनकं च, गौड़वंशं चाऽवतंसयामास निजजन्मना । मनागेव हिन्दीभाषां यवनानीं चाऽधीत्य द्वादशवार्षिक एव प्रचलितो देववाणीमधिगन्तुं काशीम् । तत्राऽपि वर्षत्रय-मुषित्वाऽनधिगतमनोरथः समाजगाम श्रीहरिधाम लीलाधाम श्रीवृन्दावनं नाम ।

तत्रापि श्रीराधारमणगोस्वामिवंशावतंसात् पण्डितप्रकाण्डात् श्रीलरास विहारिशास्त्रिणः सकाशात् व्याकरण-मध्यमपरीक्षां यावदधीत्य श्रीगुरुदेव-कृपातस्तदैव प्रकटितकवित्वशक्तिरयं निम्नाङ्कितंश्लोकं श्रीरंगविद्यालयाऽ-ध्यक्षाय श्रीधराचार्याय श्रावयित्वा सपुरस्कारं श्रीरंगलक्ष्मीमहाविद्यालयं प्राविविशत् । बाल्य एवाऽस्य श्लोकख्यापकः श्लोक एषः—

"यःकश्चिद् भोजराज्ये प्रणयति मनुजो भोजराजस्य गोष्ठ्यां
श्लोकं श्लोकद्वयं वा सपदि स लभते वर्णमात्रस्य लक्षम् ।
श्लोकानां पञ्चकेनाऽपि हि मम यदि नाऽल्पीयसी पूरिताऽऽशा
ज्ञातं यातं तदा संस्कृतकविकविताया अहो मूल्यमेव ॥"

इतो भिन्नं श्लोकपंचकं तु कविनाऽमुनैव विनिर्मिते 'श्रीवनमालि-प्रार्थनाशतकस्य परिशिष्टभागे मुद्रितमस्ति । अतिशय-प्राचीने श्रीरंगलक्ष्मी-महाविद्यालये चाऽनेन प्रधानाध्यापकाद् विपश्चिद्वर्यात् श्रीसीताराम-शास्त्रिणः सकाशात् सम्यगधीत्य बोधपूर्वकं व्याकरण-साहित्य-वेदान्तादि-

परीक्षा यावदन्तं समुत्तीर्णाः। अध्ययनकाल एव प्रसन्नादस्मादेत्र विद्यागुरोः शकाशत् "महाकविः स विज्ञेयो यो महाकाव्यकृद् भवेत्" इति कथनपूर्वकं 'महाकविः' इत्युपाधिश्च काव्यतीर्थोपाधिसमकालमेव प्राप्तः। विद्यागुरुषु चास्य परमाभक्तिरास्ते तथा चोक्तं वनमालिप्रार्थनाशतके

"जयन्ति विद्यागुरवो येभ्यो विद्यां समध्यगाम्।
यद् - दत्तविद्याविभवै-र्ग्रन्थान् प्राचीकटं बहून्॥" इति

इतिहास-पुराणादीनि त्वनेन कविना निजदीक्षागुरोरेवाधीतानि। दीक्षागुरवश्चाऽस्य आबालब्रह्मचारिणः सकलशास्त्रपारावारीणाः सनातन-धर्मरक्षकाः वादीभ-पञ्चाननाः सख्यरसाऽनुरक्ताः श्रीस्वामिकृष्णानन्ददासाऽभिधाना आसन्। यानधिकृत्यैवानेन सर्वतःप्रथमं षोड़शसर्गात्मकं "श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्यम्" व्यरचि।

अनेन विरचिता मौलिकरचनास्त्वेताः—

१—'श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्यम्' काव्यमेतन्निजदीक्षागुरूनधिकृत्य प्रणीतं षोडशसर्गात्मकं जनमात्राय परमशिक्षाप्रदम् गुरुभक्तिदं च।

२—'हरिप्रेष्ठ-महाकाव्य' एतच्च निजं भक्तिमार्गे प्रेरकं निजगुरुभ्रातरमेव नायकीकृत्य सर्गैरष्टादशभिर्निबद्धम्। मानवमात्रस्यकृते विद्याध्ययनमारभ्य भगवत्प्राप्तिपर्यन्तं यावज्जीवं सर्वशिक्षाप्रदं, वैदर्भीरीति-प्रसादगुण-विशिष्टमतीव सरसं सरलं च, करुणरसप्रधानं च। अत्र काव्ये प्रसिद्धानि सर्वाण्यपि छन्दांसि दृश्यन्ते। एतत्काव्य-दर्शनेन कविरयं कृपासिद्ध एव प्रतीयते न साधनसिद्धः। तथा चोक्तमत्रैव विद्यमाने "श्रीविश्वनाथपञ्चके"-

"वृन्दाटवी-वसति-लब्धकवित्वशक्ति—
रित्याह शम्भुकृपया वनमालिदासः" इति

अत एव उत्तरप्रदेशीयभारतसरकारेण कालिदास-पुरस्कारेण पुरस्कृतं च। सर्वं वैशिष्टयं तु पठनेनैव ज्ञातं भवति।

३—'श्रीसख्य-सुधाकरः-' दशोत्तर-द्विशतश्लोकात्मकोऽयं ग्रन्थः। अत्रापि प्रसिद्धेषु प्रायः सर्वेषु छन्दःसु सख्यभावमयी श्रीकृष्णप्रार्थनापरा कविता। अस्य विस्तृतभूमिकायां सर्ववेदोपनिषदितिहास-पुराणदि-प्रमाणै-

र्जीवेशयोर्नित्य-सख्यसम्बन्धः प्रतिप्रादितः। श्रीरूप-सनातनादीनां गौडीय-वैष्णवानां प्राचां कवीनां सूक्ष्ममितिवृत्तं चाऽस्य मङ्गलाचरण-प्रधानेषु बहुषु-श्लोकेषु लिखितमस्ति।

४—**'श्रीराधारमण-शतकम्'** श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु-पादाश्रित-श्री गोपालभट्ट गोस्वामिनां प्रबल-प्रेमप्रार्थनया शालग्रामादपि द्वादशांगुलपरि-मितायाः श्रीराधारमणाभिधायाः श्रीमूर्तेः प्रादुर्भावः प्रह्लाद-प्रार्थनया स्तम्भात् नृसिंहप्रादुर्भाव इव जात इति मनोरमं-वर्णनं सपाद-शतश्लोकैः कृतमत्रशतके कविनाऽमुना।

५—**'श्रीवनमालिप्रार्थना-शतकम्'** त्रिंशदधिकशतश्लोकैः श्रीवन-मालिनः प्रार्थना कृतात्र शतके वनमालिनो मित्रेण कविना वनमालिदासेन।

६—**'श्रीभक्तनाममालिका'** मालिकायामस्यां चतुर्युगवर्तिनां प्रसि-द्धानां प्रायः सर्वेषामेव भक्तानां नाम्नां ग्रथनमतीव कौशलेन कृतं विविध-वृत्तेषु तथा चोक्तम्—

> **"विचित्र-वृत्त-गुच्छकै विचित्रभाव-गन्धकै**
> **विचित्र-नामपुष्पकै विचित्रभक्ति-सूत्रकैः।**
> **हरे! मुदा विनिर्मिता समर्पिता गले च ते**
> **मुदं तनोतु भक्तनाम-मालिकेयमाशु ते॥"**

प्रकाशिता चेयमष्टाविंशवर्षपूर्वं 'भक्तचरिताङ्के' कल्याणविशेषाङ्के।

७—**'श्रीमध्वसिद्धान्तकणिका'** ८—**'अनेकविधस्तोत्राणि'**

एतासामष्टरचनानां रचनाकालस्तु तत्र तत्र निर्दिष्टः कविना। कवेरस्य कविता-सविता तु द्वाविंशवर्षावस्थायमेवोदितः। महाकाव्यानां रचना तु तदानीमेव कृता।

कवेरस्य टीकाग्रन्था यथा—

१—**'श्रीभक्तिग्रन्थमाला'** श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिकृतेयम्। अत्र पुस्तक-त्रयं वर्तते। १—'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुविन्दुः' २—'श्रीभागवतामृतकणिका' ३—'श्रीमाधुर्यकादम्बिनी' च। त्रिंशद्वर्षपूर्वमस्या भाषाटीका कृता, प्रकाशिता च।

२—'**श्रीपद्यावली**' श्रीरूपगोस्वामि-संकलित-निर्मित-चतुःशत-श्लोकात्मिकेयम्। अत्र पंचशतवर्ष-पूर्ववर्तिनां प्राचां सपादशतकवीनां भक्तिप्रधानानां सूक्तीनां संग्रहः। कण्ठीकृता चेयं विदुषामपि वैदुष्यं विभूषयति। द्वाविंशवर्षपूर्वमस्या भाषाटीका कृता।

३—'**श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यम्**' सार्धशतवर्षपूर्व वृन्दावनस्थ-श्रीनन्दकिशोरगोस्वामि-कृतमिदं श्रीगौराङ्गमहाप्रभूत्कर्ष-वर्णनपरं विचित्रं चित्रकाव्यसहितं च। अस्यापि भाषाटीका द्वाविंशवर्षपूर्वं कृता, प्रकाशिता चाऽधुनैव।

४—'**श्रीगोपालचम्पूः**' श्रीमद्भागवतोपरि षट्सन्दर्भाद्यनेक-भक्तिग्रन्थप्रणेतुः श्रीजीवगोस्वामिनः कृतिरियम्। अद्यावधि विनिर्मितानां सर्वासामेव चम्पूनां मध्ये आकार-प्रकारतः सर्वतः स्थूलेयम्। पूर्वोत्तरतया भागद्वयात्मिकेयम्। दार्शनिकसिद्धान्त-दृष्टचा माधुर्यवृष्टचा च परिपूर्णेयम्। भागवतीय-सम्पूर्णदशमस्कन्धस्य भाष्यात्मिकेयं, विद्वत्तायाः सुमददमनी च। अत्रापि भाषाटीकां टीकयता कविनाऽमुना महानेवोपकारः कृतो भाषाजगतः। प्रकाशिता चेयं द्वादशवर्षपूर्वमेव भारतकेन्द्रीयसाहाय्येन।

५—'**आनन्दवृन्दावनचम्पूः**' षोडशशताब्दौजातस्य, श्रीकृष्णचैतन्यस्य दक्षिणपादाङ्गुष्ठपानात् कुमारावस्थायामेव प्रादुर्भूताऽलौकिक-कवित्वशक्तिकस्य, अतएव अलङ्कारकौस्तुभादि-दशग्रन्थप्रणेतुः श्रीकविकर्णपूरस्य लोकोत्तरा कृतिरियम्। रासलीलापर्यन्तं दशमस्कन्धीयं चरितमङ्गीकृत्यकृतेयं सर्वानपि कवीन् चमच्चरीकरीति। कादम्बरीरचनां चातिशेते। एषापि चम्पूः केन्द्रीयशासन-साहाय्येन संस्कृतसंवलितभाषाटीकासहिता प्राकाश्यमानीता। भाषाटीकामन्तरा तु पूर्वोक्तं चम्पूद्वयमपि विदुषामप्यगोचरमेवआसीत्। अधुना तु भाषाटीका-साहाय्येन ययोरुपरि बहुभिः पी. एच्-डी. क्रियते कृता च।

६—'**श्रीस्तवरत्ननिधिः**' अत्र उपदेशामृत—मनःशिक्षाप्रभृतीनि बहूनि स्तोत्ररत्नानि वर्तन्ते। श्रीब्रह्मसंहितायाः पञ्चमाध्यायस्य सप्तविंशतिमन्त्रा वर्तन्ते महामन्त्रस्य विविधा व्याख्या अपि भाषाटीकया स्फोरिताः सुखयन्ति सहृदयान्।

कवेरस्य सूक्तिसंग्रहात्मकाःकृतयो यथा—

१—'श्रीमहाभारत-सूक्तिसंग्रहः। २—श्रीवाल्मीकीय-सूक्तिसंग्रहः। ३—श्रीहरिवंशपुराणीय-सूक्तिसंग्रहः। ४—श्रीजैमिनीयाश्वमेधपर्वीय-सूक्तिसंग्रहः।

कविनाऽमुना कृतानि विविधानि स्तोत्राण्यपि सन्ति। अभिनन्दन-प्रशस्ति-सम्मति-पत्राणि तु पञ्चाशत्तोऽप्यधिकानि सन्ति, सर्वाणीमानि श्री-वनमालिप्रार्थनाशतकान्ते मुद्रितानि। कतिपयस्तोत्राणां नामानि तु यथा—१—श्रीगुरुदेवस्मरणाष्टकम् २—श्रीगोवर्धनाष्टकम् ३—श्रीवृन्दावनाष्टकम् ४—श्रीरामभद्रदशकम् ५—श्रीविश्वनाथपंचकम् ६—श्रीरामकृष्णस्तोत्रम् ७—श्रीयमुनास्तोत्रम् ८—श्रीराधास्तोत्रम् ९—प्रातःस्मरणस्तोत्रम् १०—सूक्ष्मं श्रीचैतन्यलीलामृतम् ११—श्रीराधाकृष्णस्तोत्रम् १२—श्रीधन्वन्तरिस्तोत्रम्

निरपेक्ष-निःशुल्क-संस्कृत-सेवा यथा—

कविरयं "व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामास्त्रे" इत्युक्त्यनुसारं प्रारम्भत एव संस्कृतवाङ्मयपठन-पाठने महान् व्यसनी। संस्कृत-सेवार्थमनेन "श्री-मध्वगौराङ्गनामा" विद्यालयोऽपि समुदघाटि। यत्र च आगन्तूनां स्थायिनां च छात्राणां निवासस्थान-दान-भोजन–वस्त्रादिना, स्वयमेव व्याकरण-साहित्य-श्रीमद्भागवतादि-प्राचीनतम-निगूढ़-शास्त्राणां पाठनादिना च महा-नेवोपकारो विधीयते। त्रिंशद्वर्षत इयं सेवा चलति, यावज्जीवं चालयिष्यते च।

अपरं च ये केचन विद्वांसः कविताभ्यासपराः कवयः स्वनिर्मितश्लोकेषु वर्तमानास्त्रुटीर्निःसारयितुमायान्ति तेषां त्रुटीरेष सहृदयो निरहंकार आशुकविः सविनयं शीघ्रमेव निःसार्य आगतान् विदुषोजनान् सुखयति, लब्धमनोरथांश्च करोति।

"श्रीस्तवकल्पद्रुमे" वर्तमानानां दशसहस्राणां प्राचीनतमानां खण्डित-श्लोकानां संशोधनं चानेन द्वाविंशवर्षपूर्वमेव व्यधायि, प्राकाशि च 'स्तव-कल्पद्रुमः'। किंच पूर्वोक्तानां निजकृतीनां सर्वासामेव भाषाटीकां विधाय संशोधनपूर्वकं प्रकाशनं च कृत्वा परवर्ति-विदुषां भारश्चापनीत एव। बिंहुना—

"अप्रेक्ष्य फलममात्मनो विदधते प्रीत्या परेषां प्रियं
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि ।
विद्या-वित्त-कुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्रमान्नम्रतां
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ।"

श्रीरूपगोस्वामिनां सूक्तिरियं कविनाऽनेन चरितार्था विधीयते ।
कविरयं स्वयमेव प्रदत्तवान्, परिचयं स्वकमत्र न संशयः ।
लिखितवांश्च करेण निजेन तं, निजविनिर्मित-संस्कृत-भाषया ।।१।।

प्रेमोल्लास-प्रकाशिका-टीकाकार का परिचय

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपा से कृपासिद्ध यह कवि, बाल्यावस्था से ही हरि भक्त हैं, श्रीकृष्ण में मित्रभाव से अनुरक्त हैं, परमविरक्त हैं, अतएव इन्होंने प्रवृत्तिमार्ग (गृहस्थाश्रम) का अनुसरण नहीं किया है; अपितु निज-हितार्थ श्रीमध्वसम्प्रदाय का अनुसरण किया है। इनकी प्रकृति सरल है. आकृति सुन्दर है, अपनी कृतियों के द्वारा इन्होंने सभी सज्जनों को अनुरंजित कर दिया है, और ये कविमात्र की कृतियों के गुणग्राही हैं, सूक्तियों के संग्रह में ही लगे रहते हैं; अतः दूसरे कवियों की वाणी की प्रशंसा के विषय में ये मौनी नहीं बने रहते, इस समय आप चौंसठ वर्ष के हैं।

आपने, विक्रम संवत् १९७५ में कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में वैकुण्ठ चतुर्दशी भरणी नक्षत्र से युक्त रविवार के दिन सवातीन बजे प्रगट होकर हरियाणा प्रदेश को अलंकृत कर दिया। और हिसार जिला के अन्तर्गत 'वास'–नामक ग्राम को, तथा 'जँजीरी'–नामक जननी को एवं जननीतिज्ञ पं० श्रीतुलाराम'–नामक अपने जनक को कृतार्थ कर दिया। अधिक क्या कहें ? अपने जन्म से तो आपने गौड़ ब्राह्मण वंशको ही विभूषित कर दिया।

अपने गाँव में तो आप थोड़ी-सी हिन्दी एवं उर्दू पढ़कर बारह वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत अध्ययनार्थ काशी चल दिये। वहाँपर भी तीन वर्ष निवास करके अपना मनोरथ पूर्ण न होने के कारण—१५ वर्ष की

अवस्था में, श्रीहरि की मधुर लीलाओं के धाम श्रीवृन्दावनधाम में चले आये।

वहाँपर भी 'श्रीराधारमण' मन्दिर के गोस्वामी वंश-विभूषण, पण्डितप्रवर श्रीरासविहारी गोस्वामी जी से व्याकरण की मध्यमा परीक्षा तक अध्ययन करके, श्रीगुरुदेव की कृपा से उसी समय प्रकट हुई कवित्व-शक्ति से युक्त होकर, 'स्रग्धरा' छन्दोविशिष्ट निम्नांकित श्लोक को, श्रीरंगविद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष श्रीश्रीधराचार्य जी को सुनाकर, उनके द्वारा पुरस्कृत होकर आप, 'आदर्श श्रीरंगलक्ष्मी महाविद्यालय' में प्रविष्ट हो गये। बाल्यावस्था में ही आपकी कीर्तिका विस्तारक वह श्लोक यह है—

"यःकश्चिद् भोजराज्ये प्रणयति मनुजो भोजराजस्य गोष्ठ्यां
श्लोकं श्लोकद्वयं वा सपदि स लभते वर्णमात्रस्य लक्षं।
श्लोकानां पंचकेनाऽपि हि मम यदि नाऽल्पीयसी पूरिताऽऽशा
ज्ञातं यातं तदा संस्कृतकवि-कविताया अहो मूल्यमेव ॥"

इस श्लोक से भिन्न पाँच श्लोक तो इन्हीं कविवर्य के द्वारा बनाये हुए "श्रीवनमालि-प्रार्थनाशतक"–नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में प्रकाशित हो चुके हैं। अतिशय प्राचीन श्रीरंग विद्यालय में भी आपने विद्वद्वर्य-प्रधानाध्यापक श्रीसीताराम शास्त्री जी महाराज से, बोधपूर्वक अच्छी तरह से अध्ययन करके, व्याकरण, साहित्य, वेदान्तादि शास्त्रों की परीक्षायें परिपूर्ण रूप से उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण करलीं।

और अध्ययन के समय में ही प्रसन्न हुए पूर्वोक्त विद्यागुरु के द्वारा "जो महाकाव्य बना देता है, वही महाकवि समझने योग्य है" इस उक्ति के अनुसार आपने 'काव्यतीर्थ' की उपाधि के साथ साथ 'महाकवि' की उपाधि भी प्राप्त कर ली।

अपने विद्यगुरुओं में आपकी परम भक्ति है, अतएव आपने अपने द्वारा बनाये हुए 'श्रीवनमालिप्रार्थना-शतक' में गुरुजनों की प्रार्थना करते हुए ठीक ही कहा है कि,—

"जयन्ति विद्यागुरवो येभ्यो विद्यां समध्यगाम् ।
यद् दत्तविद्याविभवै-र्ग्रन्थान् प्राचीकटं बहून् ।"

'मेरे उन श्रीविद्यागुरुओं की जय हो कि, जिनके द्वारा मैंने विद्या प्राप्त की हैं। और जिनकी दी हुई विद्या के वैभवों से मैंने बहुत से ग्रन्थ प्रगट किये हैं।' इतिहास-पुराण आदिकों का अध्ययन तो इस कवि ने अपने दीक्षागुरु से ही किया है। इनके दीक्षागुरु भी आबालब्रह्मचारी थे एवं सभी शास्त्रों के पारंगत विशिष्ट विद्वान् थे, सनातन धर्म के रक्षक महात्मा थे, वादीविवादी नास्तिकजनरूप गजेन्द्रों का मर्दन तो मृगेन्द्र (सिंह) की भाँति करते थे; सख्यभाव में अनुरक्त थे, परमविरक्त थे एवं श्रीमध्वमतानुयायी वैष्णव थे। जिनका प्रातः स्मरणीयनाम "श्रीस्वामिकृष्णानन्ददासजी महाराज" था। जिनको लक्ष्य बनाकर ही इस कवि ने सर्वतः प्रथम सोलह सर्गों से युक्त "श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्य" की रचना की है।

इनके द्वारा विरचित मौलिक ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

१—**"श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्य"** यह काव्य, अपने दीक्षागुरु को ही नायक बनाकर विरचित किया है, सोलह सर्गों से युक्त है, जनमात्र के लिये शिक्षाप्रद हैं, और गुरुभक्ति को देने वाला है।

२—**"श्रीहरिप्रेष्ठ-महाकाव्य"** यह काव्य भी, अपने को भक्तिमार्ग में प्रेरणा देनेवाले अपने बड़े गुरुभ्राता को ही नायक बनाकर अठारह सर्गों में निबद्ध किया है। मानवमात्र के लिये विद्याध्ययन से लेकर जीवनभर भगवत् प्राप्ति पर्यन्त समस्त शिक्षाओं को देनेवाला है; वैदर्भीरीति एवं प्रसाद-गुण विशिष्टि है; अत्यन्त सरल एवं सरस हैं; करुणारस-प्रधान है। इस काव्य में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध छन्द तो प्रायः सभी दृष्टिगोचर होते हैं। इस काव्य के देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि, यह कवि कृपासिद्ध ही है, साधनसिद्ध नहीं है! इस बात को, इस कवि ने, इसी काव्य में विद्यमान "श्रीविश्नाथ-पंचक"–नामक स्तोत्र के अन्त में, स्वयं ही स्पष्ट कह दिया है "वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्वशक्ति–, रित्याह शंभुकृपया वनमालिदासः" अतएव इस महाकाव्य को, उत्तरप्रदेशीय भारत सरकार ने भी 'कालिदास-

पुरस्कार" से सादर पुरस्कृत कर दिया है। इस काव्य की समस्त विशेषतायें तो इसके पठन से ही ज्ञात हो सकती हैं।

३—"**श्रीसख्य-सुधाकरः**" इस ग्रन्थ में २१० श्लोक हैं। उनमें भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रायः सभी छन्दों में सख्य-भावमयी श्रीकृष्ण-प्रार्थनापरक कविता है। इस ग्रन्थ की विशाल-भूमिका में समस्त-वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण आदि के प्रमाणों द्वारा, जीव एवं ईश्वर का नित्य सख्य-सम्बन्ध प्रतिपादित किया है और इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण प्रधान बहुत से श्लोकों में, श्रीरूप, सनातन, जीव, गोपालभट्ट, रघुनाथभट्ट-रघुनाथदास, कृष्णदास कविराज, कविकर्णपूर, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती प्रभृति प्राचीन गौड़ीय वैष्णव महानुभाव रसिककविकुल मुकुटमणियों का सूक्ष्मतर इतिहास भी लिखा गया है।

४—"**श्रीराधारमण शतक**" इस शतक में, श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु के चरणारविन्दाश्रित श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी की प्रबलप्रेममयी प्रार्थना से शालग्राम शिला से ही 'श्रीराधारमण'—नामक श्रीमूर्ति का प्रादुर्भाव, श्री-प्रह्लादजी की प्रार्थना से स्तम्भ से श्रीनृसिंह भगवान् के प्रादुर्भाव की भाँति-अतिशय मनोहर ढंग से १२० श्लोकों में वर्णन किया है।

५—"**श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक**" इस शतक में, वनमाली भगवान् के मित्र 'श्रीवनमालिदास'—नामक महाकवि ने श्रीवनमाली भगवान् की मित्र भावमयी प्रार्थना, १३० श्लोकों में विचित्र भावों में भरकर की है।

६—"**श्रीभक्तनाममालिका**" इस 'भक्तनाममालिका' में १३१ श्लोकों में, चारोंयुगों में होनेवाले प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रायः सभी भक्तों के नामों का गुम्फन अनेक प्रकार के छन्दों में कवि ने अतिशय कुशलतापूर्बक किया है, जो देखने एवं पढ़ने योग्य है, अतः कविने स्वयं कहा भी है—

"विचित्र-वृत्त-गुच्छकै – र्विचित्रभावगन्धकै
र्विचित्र-नामपुष्पकै – र्विचित्र-भक्तिसूत्रकैः।
हरे! मुदा विनिर्मिता समर्पिता गले च ते
मुदं तनोतु भक्तनाममालिकेयमाशु ते।" इति

यह लगभग तीस वर्ष पहले कल्याण के विशेषाङ्क—'भक्तचरितांक' में प्रकाशित भी हो चुकी है। इसके नित्यपाठ करने से भगवान् विशेष प्रसन्न होते हैं।

७—**"श्रीमध्वसिद्धान्तकणिका"** ८—**'अनेक प्रकार के स्त्रोत्र"**

इन आठों रचनाओं का रचनाकाल तो कवि ने उस-उस रचना में स्वयं ही वर्णन कर दिया है। इस कवि की जिह्वारूप उदयाचल पर कवितारूप-सविता का उदय तो इनकी वाईसवीं वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। महाकाव्यों की रचना तो इन्होंने उसी अवस्था में कर दी थी।

इस कवि के द्वारा विरचित टीका से युक्त ग्रन्थ—

१—**'श्रीभक्तिग्रन्थमाला"** यह श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती की बनाई हुई हैं। इसमें तीन पुस्तक निबद्ध हैं। १-श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धुविन्दुः २-श्री-भागवतामृतकणिका ३-श्रीमाधुर्यकादम्बिनी। इसकी टीका तीस वर्ष पहले प्रकाशित हो चुकी है।

२—**"श्रीपद्यावली"** यह श्रीरूपगोस्वामी जी के द्वारा संकलित एवं निर्मित चार सौ श्लोकों से युक्त है। इसमें पाँच सौ वर्ष पहले होने वाले, भक्तिरसरसिक १२५ महाकवियों की सूक्तियों का संग्रह है। कण्ठ कर लेने पर तो यह 'पद्यावली' बड़े-बड़े विद्वानोंकी विद्वत्ताको भी विभूषित कर देती है। इसकी भाषाटीका भी वाईस वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हो चुकी है।

३—**"श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्य"** यह काव्य १५० वर्ष पूर्व श्रीवृन्दावन में वर्तमान श्रीनन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी जी द्वारा विरचित हुआ है। श्रीगौराङ्गमहाप्रभु के उत्कर्ष का वर्णन करनेवाला है, रचना शैली से विचित्र एवं चित्रकाव्य से युक्त है। जो आपके करकमलों में विद्यमान हैं। ग्रन्थकार का विशेष परिचय 'अनुवादकीय वक्तव्य' में देखने योग्य है। इस की टीका भी बाईस वर्ष पूर्व ही लिखी जा चुकी थी, परन्तु प्रकाशित अभी हुई है।

४—**"श्रीगोपालचम्पूः"** यह—श्रीमद्भागवत के ऊपर षट्सन्दर्भ आदि अनेक भक्तिग्रन्थों के प्रणेता श्रीजीवगोस्वमी की कृति है। यह चम्पू-

ग्रन्थ, आजतक विनिर्मित हुए सभी चम्पूग्रन्थों में आकार प्रकार से सर्वतो-भाव से विशाल हैं। अतएव इसकी भूमिका में मैंने भी ठीक ही लिखा है—

"अन्ये ग्रन्थास्तु टीकाभिष्टिप्पणीर्भिविशालताम्।
दधते किन्त्वयं मूलाद् विशालः प्रतिभाति मे॥" इति

यह ग्रन्थ—'पूर्वचम्पू' एवं 'उत्तरचम्पू' के नाम से दो भागों में विभक्त है। दार्शनिकसिद्धान्त की दृष्टि से एवं माधुर्य की वृष्टि से परिपूर्ण है। श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण दशम स्कन्ध का भाष्यस्वरूप हैं, विद्वत्ता के सुन्दरमद का दमन करनेवाला है। इस अतिशय विशाल ग्रन्थपर भी भाषा टीका का निर्माण करके इस कवि ने भाषाजगत् का महान् उपकार किया है। भारतीय केन्द्र की सहायता से यह ग्रन्थ बारह वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका है।

५—"श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः" यह सोलहवीं शतब्दी में अवतीर्ण होनेवाले श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के दक्षिणचरण के अंगुष्ठ का पान करने से पाँच वर्ष की अवस्था में ही अलौकिक कविताशक्ति का लाभ करने वाले, अत एव "अलंकार कौस्तुभ" आदि दश ग्रन्थों की रचना करनेवाले 'श्री कविकर्णपूर' गोस्वामी की लोकोत्तर कृति है। दशमस्कन्ध के रासलीला पर्यन्त के चरित्र को अंगीकार करके यमक प्रधान गद्य में विरचित हुई यह कृति सभी कवियों को चमत्कृत कर देती है। 'कादम्बरी' की रचना को भी अतिक्रान्त कर गई है। यह चम्पू भी केन्द्रीय शासन की सहायता से संस्कृत मिश्रित-भाषाटीका के सहित प्रकाशित हो चुकी हैं। भाषा टीका के बिना तो पूर्वोक्त दोनों चम्पूग्रन्थ, विद्वानों के भी अगोचर ही थे। अब तो भाषा की सहायता से इन दोनों ग्रन्थों के ऊपर बहुत से व्यक्ति पी. एच. डी, कर चुके हैं, और कर रहे हैं।

६—"स्तवरत्ननिधिः" इस ग्रन्थ में 'उपदेशामृत' 'मनः शिक्षा' आदि अनेक स्तोत्ररूप रत्न विद्यमान हैं। एवं ब्रह्मसंहिता के २७ मन्त्र भी हैं, और महामन्त्र की अनेक प्रकार की व्याख्यायें भी भाषाटीका के द्वारा स्पष्ट कर दी गयी हैं। जो सरस एवं सरल हृदयवाले भक्तजनों को परमानन्द देती रहती हैं।

इस कवि की सूक्तिसंग्रहात्मक कृतियाँ

१—श्रीमहाभारत-सूक्तिसंग्रहः। २—श्रीवाल्मीकीय-सूक्तिसंग्रहः। ३—श्रीहरिवंशपुराणीय-सूक्तिसंग्रहः। ४—श्रीजैमिनीयाश्वमेध पर्वीय-सूक्तिसंग्रहः।

इस कवि के द्वारा बनाए हुए अनेक प्रकार के स्तोत्र भी विद्यमानहैं। एवं 'अभिनन्दन पत्र, प्रशस्तिपत्र सम्मतिपत्र तो सवासौ से भी अधिक हैं। ये सब, कुछ तो 'वनमालिप्रार्थना शतक के अन्त में और कुछ श्रीगौरप्रेमोल्लास-काव्य के अन्त में प्रकाशित हैं। कतिपय स्तोत्रों के नाम तो ये हैं–१-श्रीगुरुदेवस्मरणाष्टक २–श्रीगोवर्धनाष्टक ३–श्रीवृन्दानाष्टक ४–श्रीरामभद्रदशक ५–श्रीविश्वनाथपञ्चक ६–श्रीरामकृष्णस्तोत्र ७–श्रीयमुनास्तोत्र ८–श्रीराधास्तोत्र ९–प्रातःस्मरणस्तोत्र १०–सूक्ष्म श्रीचैतन्यलीलामृत ११–श्रीराधाकृष्णस्तोत्र १२–श्रीधन्वन्तरिस्तोत्र इत्यादि

निरपेक्ष-निःशुल्क-संस्कृतसेवा

यह कवि "व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामास्त्रे" इस उक्ति के अनुसार, प्रारम्भ से ही संस्कृत-वाङ्मय के पठन-पाठन का महान् व्यसनी है। संस्कृत की सेवा के लिये इसने "श्रीमध्व-गौराङ्ग" विद्यालय का उद्घाटन भी किया है। जिसमें आगन्तुक एवं स्थायी रहने वाले छात्रों के लिये निवास-स्थान-दान-भोजन वस्त्रादि के द्वारा, एवं स्वयं ही व्याकरण, साहित्य—और श्रीमद्भागवत आदि अतिशय प्राचीन गूढ़तम शास्त्रों के पठन-पाठन आदि के द्वारा महान् उपकार किया जा रहा है। यह निःशुल्क-सेवा तीस वर्ष से बराबर चली आ रही है और जीवन भर चलती रहेगी।

इस कवि की दूसरी विशेषता यह है कि, "जो कोई भी विद्वान् अथवा कविता बनाने के अभ्यास में संलग्न नवीन कविजन, अपने बनाये हुए श्लोकों में त्रुटि निकलवाने को जब भी इनके निकट आते हैं, उसी-समय सहृदय, निरहंकार एवं आशुकवि यह कवि, उनके श्लोकों में वर्तमान त्रुटियों को, विनयपूर्वक शीघ्र ही निकाल कर, आये हुए विद्वानों को सुखी बना देता है, एवं उनके मनोरथ को पूर्ण कर देता है"।

किंच इन्हीं के सहृदयमित्र, महात्मा श्रीपुरुषोत्तमदास जी के द्वारा संगृहीत "श्रीस्तवकल्पद्रुम"–नामक ग्रन्थ में वर्तमान दश हजार अतिशय प्राचीन खण्डित श्लोकों का संशोधन तो इस कवि ने बाईस वर्ष पहले ही कर दिया था। और वह ग्रन्थ प्रकाशित भी उसी समय हो गया। किं च इस कवि ने अपने द्वारा बनाये हुए पूर्वोक्त सभी काव्यों की भाषाटीका बनाकर एवं स्वयं ही संशोधन पूर्वक छपाकर परवर्ती विद्वानों का भार भी मानों हल्का कर दिया। विशेष कहने से क्या ? देखिये

"अप्रेक्ष्य क्लममात्मनो विदधते प्रीत्या परेषां प्रियं
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्राऽनुबन्धादपि।
विद्या-वित्त-कुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्रमान्नम्रतां
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ॥१॥

'विदग्ध-माधव'-नाटककी प्रस्तावनामें कही हुई 'श्रीरूपगोस्वामी' की इस सूक्ति को यह कवि बाल्यावस्था से ही चरितार्थ बना रहा है। तात्पर्यः- सन्तों की परम रमणीय यह स्वाभाविकी प्रक्रिया (रहन-सहन, चाल-चलन) सदैव से सर्वोपरि विराजमान है कि, वे सन्त, अपने शारीरिक कष्ट की ओर दृष्टिपात न करके प्रीतिपूर्वक दूसरों का ही प्रिय करते रहते हैं, और अपनी प्रशंसा के सम्बन्ध से तो वे बुरे कार्य के उद्यम की तरह लज्जा करते रहते हैं, तथा विद्या, धन, उच्च कुल आदि से तो ये क्रमशः नम्रता को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् वे सन्त, जितने अधिक विद्वान्, अधिक धनवान् उच्च कुल वाले होंगे उतने ही अधिक विनम्र होंगे। यह प्रक्रिया इस कवि में स्वभावतः दृष्टिगोचर होती है। यह समस्त परिचय इस कवि ने स्वयं ही दिया है। इस विषय में किंचित् भी सन्देह नहीं है। और यह परिचय, स्वयं बनाई हुई संस्कृत भाषा के द्वारा अपने हाथ से लिख भी दिया है, जो इससे पहले छपा हुआ है।

श्रीगुरुदेव की प्रार्थना

लेखक—हमारे श्रीगुरुदेव के छोटे भाई एवं शिष्य
श्रीअमरचन्दजी गौड़

गुरुदेव तुम्हीं सरवस मेरे, सब झूँठा जग का नाता है।
है आप बिना अब कौन मेरा कोई पिता नहीं नहिं माता है।।
यह देश विराना लगता है, घरबार न हमें सुहाता है।
यह मन मलिन्द थिर नहीं होता, पदपङ्कज को ललचाता है।।

श्रीवृन्दावन की भूमि में, मेरा भी रहना हो जावे।
हो जावे जन्म सुफल मेरा, चरणों में रहना हो जावे।।
यह प्रथम आपका कहना है गुरुजी सों बात छिपावे ना।
सन्देह-रहित सब कह देवे, जो बात समझ में आवे ना।।

यह लगन लगी रहती हरदम, चरणों के बीच निवास करूँ।
आँखों से रूप-सुधा पीकर, मन प्रेम के सिन्धु डुवाया करूँ।।
यह बड़े भाग्य से योग हुआ, चरणों से परे हटाना ना।
है प्यास आपके दरसन की, बिन दर्शन के तड़पाना ना।।

शेष हैं दिन जो जीवन के, इन चरणों ही में कट जावें।
गुरुदेव कृपा की कोरों से, सब दुःख जन्म के मिट जावें।।
बाँह पकड़कर तुमने ही कितनों को जग में तारा है।
मुझ दीन हीन पै कृपा करो, ये ही सन्देश हमारा है।।
यह सीस गुरु के चरणों में, मैंने अब अर्पण कर दीन्हा।
इसको अब परे हटाना ना, जो सीस चरण पर धर दीन्हा।।
असली है अर्ज यहीं मेरी, मुझे अपने पास बुला लेना।
इस 'अमरचन्द' को दास समझ, पदपङ्कज से लिपटा लेना।।

श्रीगौराङ्गविधुर्जयति

श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम्

* श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यम् *

इतस्त्रयोविंशतिश्लोकेषु शार्दूलविक्रीडितम् ।

सद्वृन्दावनसन्तत–प्रणयतः श्रीकृष्णचन्द्रायते
नित्यं यः खरदूषण–प्रहरणात् श्रीरामचन्द्रायते ।
प्रह्लादोदितवैभवेन वपुषा यः श्रीनृसिंहायते
तस्मै केलिरसार्णवाय च नमः श्रीगौरचन्द्राय ते ।। १ ।।

प्रेमोल्लास-प्रकाशिका

टीकाकर्त्तुर्मङ्गलाचरणम्

श्रीमन्मध्वमतावलम्बिनमहं मध्वाध्वगश्चाप्यहं
श्रीमन्नन्दकिशोरचन्द्रसुकविं नत्वा भृशं प्रार्थये ।
प्रेमोल्लाससुभाषितानि हृदये कञ्जानि वाप्यामिव
नित्यं मे विलसन्तु येन नितरां तद्भावनां प्राप्नुयाम् ।।

श्रीमत्कृष्णानन्ददासं गुरुं स्वं, श्रीमन्मध्वाचार्यपादानुगाँश्च ।
श्रीगौराङ्गं गौरपादानुगाँश्च, नित्यानन्दं नित्यमेवाऽभिवन्दे ।।
रचयति सरलां भाषां, श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यस्य ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।

सज्जनवृन्दों की रक्षा में निरन्तर प्रेम करने के कारण, अथवा सुन्दर श्रीधाम वृन्दावन में निरन्तर प्रेम करने के कारण, श्रीकृष्णचन्द्रका-सा आचरण करनेवाले आपके लिये मेरा नमस्कार है, और प्रतिदिन भक्तों के भक्ति बाधक तीक्ष्ण दोषों को दूर करने के कारण खर दूषण राक्षस निहन्ता श्रीरामजीका-सा आचरण करनेवाले आपके लिये मेरा नमस्कार है, एवं प्रेमलक्षणा भक्ति के सर्वाङ्ग वैभव परिपूर्ण श्रीविग्रह के कारण भक्तवर्य श्रीप्रह्लादजी की प्रेमलक्षणा भक्ति के वैभव से स्तम्भ से प्रगट होनेवाले श्रीनृसिंह भगवान्‌का-सा आचरण करनेवाले आपके लिये मेरा नमस्कार है, एवं पुर्वोक्त अवतारत्रयगुण-विशिष्ट ! शिष्टवर्यपूज्यपाद ! प्रेमलीला-समुद्रस्वरूप ! हे श्रीगौरचन्द्र ! आप के श्रीचरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम है ।। १ ।।

पूर्वाशां समलंकरोति महसा श्रीकण्ठशोभः सदा
राधाभावसमन्वितः सुखकरः सन्मण्डलप्रीतिदः ।
रामानन्दमहोत्सवो विजयते गौरांगचन्द्रः सदा
आरूढो द्विजराजराजपदवीं कान्त्युल्लसत्तारकः ॥ २ ॥

जो अपने तेज से पूर्वदिशा को अलंकृत करते हैं अथवा पूर्व-पूर्व विशिष्ट भक्त श्रीअद्वैताचार्य प्रभृतियों की आशा को पूर्ण करते हैं, और श्रीविष्णुप्रिया पूर्ववर्तिनी पत्नी श्रीलक्ष्मीजी के कण्ठ की सदा शोभा बढ़ानेवाले हैं, श्रीराधाभाव से जो मुक्त हैं और सर्वजन सुखदाता एवं सज्जनों की मण्डली को प्रीतिप्रद हैं, और जो भक्तवर्य श्रीरामानन्दजी के महोत्सव-स्वरूप हैं, और जो ब्राह्मणश्रेष्ठ पदवी को अलंकृत कर रहे हैं, एवं अपने श्रीविग्रह की कान्ति से ही उल्लसित सज्जनों का जो उद्धार करते हैं, एवंगुणविशिष्ट श्रीगौराङ्ग चन्द्रमा की सदा जय हो । चन्द्रपक्षे अर्थ :—

चन्द्रमा भी उदित होकर पूर्व दिशा को अलंकृत करता है श्रीमहादेवजी के मस्तक की शोभा बढ़ाता है और विशाखा अपर-पर्याय राधानामक नक्षत्र के प्रति भावयुक्त है, एवं पूर्ण होकर सपतिका स्त्रियों के लिये आनन्द महोत्सव का सम्पादन करता है । गौराङ्ग वह स्वयं है द्विजराज उसका दूसरा नाम है, अपनी कान्ति से ताराओं की शोभा बढ़ाता है ॥ २ ॥

प्रेमोद्गारमिवाश्रुभिर्विगलितैर्भूयोऽवनायोद्यतः
सिंचन्भक्तिलतांकुरं कलियुगप्रारंभतो जर्जरम् ।
लोके पल्लवितं चकार कृपया संकल्पकल्पद्रुम-
श्चित्तं कस्य वशीकरोति न सखे ! स श्रीशचीनन्दनः ॥३॥

कलियुग के प्रारम्भ के कारण जर्जरीभूत भक्तिलता के अंकुर को "रक्षा करने के लिये उद्यत प्रेमोद्गारस्वरूप अपने अश्रुविन्दुओं द्वारा" कृपामयी दृष्टि वृष्टि से सिंचित करके जिन्होंने लोक में पल्लवित, पुष्पित, फलित करके दिखा दिया, तो कहिये हे सखे ! एवंगुणविशिष्ट भक्त संकल्पपूरक श्रीशचीनन्दन किसके चित्त को नहीं चुराते, अपितु सभी के चित्त को अपने वश में कर लेते हैं ॥ ३ ॥

याचे नैव पुलोमजापतिपदं नो सार्वभौमं सुखं
नो कैलासविलासमप्यविरतं वैकुण्ठवासं न वा ।

कैवल्यं न च नैव सिद्धिपदवीं न ब्रह्मलोकेशतां
भूयाज्जन्मनि जन्मनि प्रतिपद चेद् गौरपादे रतिः ।। ४ ।।

भगवत् कृपा से यदि श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के श्रीचरणों में मेरी जन्म-जन्मान्तरों में विशुद्ध प्रीति होती रहे तो मैं, प्रभु से इन्द्रपद, सार्वभौमसुख, निरन्तर कैलासवास, निरन्तर वैकुण्ठवास, मोक्ष, ऋद्धि, सिद्धि और ब्रह्मलोकेशता आदि किसी भी पद की याचना नहीं करता ।। ४ ।।

संगः स्याद्यदि तर्हि गौरचरणांभोजैकबद्धस्पृहैः
प्रीतिः स्याद्यदि तर्हि गौरचरणे संकल्पकल्पद्रुमे ।
वासः स्याद्यदि तर्हि कुत्र सततं चैतन्यदेवालये
जन्म स्याद्यदि तद्ध्रुवं किमपरं चैतन्यसेवास्पदम् ।। ५ ।।

यदि संसार में हमें संग मिलै तो श्रीगौरचरणारविन्दानुरक्त भक्तों का ही मिले, यदि प्रीति हो तो भक्त संकल्पपूरक श्रीगौरचरणों में ही हो। यदि कहीं वास हो तो श्रीचैतन्यदेव के मन्दिर के समीप में हो और यदि स्थायी जन्म भी हो तो श्रीचैतन्यदेव की सेवा के योग्य ही हो, इससे भिन्न हमें कुछ भी नहीं चाहिये ।। ५ ।।

नानाशास्त्रपुराणपारपदवी बुद्धया समालोडिता
वेदान्ता अपि शीलिताः प्रतिदिनं योगेऽपि योगः कृतः ।
वादव्याधिहराः परावधिमितास्ते पंडिताः सेविता-
श्चित्तं क्वापि न मे स्थिरत्वमगमच्चैतन्यपादं विना ।। ६ ।।

मैंने बुद्धियोगपूर्वक सर्वशास्त्र एवं पुराणों का आद्योपान्त अवलोकन किया, वेदवेदान्तों का अनुशीलन किया, योगानुष्ठान में भी विशेष प्रयत्न किया और वादविवादरूपी व्याधी को हरनेवाले अनेकों पण्डितों की सेवा भी सुचारुरूप से की, परन्तु मेरा चित्त तो श्रीचैतन्यदेव के चरणों के बिना कहीं भी स्थिर न हुआ ।। ६ ।।

कालव्यालभयेन हन्त जगति भ्रान्तं मया सर्वतो
ब्रह्माद्याः समुपासिता अपि परं कैर्नाप्यहं रक्षितः ।
त्यक्त्वा तत्सकलं मयाद्य भवतः पादौ समालिंगितौ
त्वं चेन्नैव कृपां करोषि तदहो निर्वीरमुर्वीतलम् ।। ७ ।।

अहह ! कालरूपी व्याल के भय से मैं जगत् में सब जगह घूमा, ब्रह्मादि देवों की उपासना भी की, परन्तु किसी ने भी मेरी रक्षा नहीं की,

अतः हे दयालो ! श्रीचैतन्यदेव ! उन सबको त्यागकर अब तो आपके श्रीचरणों की शरण ली हैं, यदि आप भी मुझ दीन-हीनपर कृपा नहीं करते हो तो मैंने समझ लिया कि, इस समय शरणागतरक्षक-वीरों से पृथ्वीतल हीन हो गया है ।। ७ ।।

आनन्देन परिप्लुता इव दिशो विश्वं समस्तं तथा
स्नातं प्रेमपयोनिधाविव रसाधारा धरा दृश्यते ।
उन्मत्ता इव मानुषा जननि हे किं कारणं तद्वद
त्वं जानासि न बाल्यमुग्धहृदये ! गौरोऽधुना नृत्यति ।। ८ ।।

एक बालिका अपनी माता से पूछती है कि हे माताजी ! सम्पूर्ण जगत् दिशा-विदिशाओं सहित आनन्द से व्याप्त हो रहा है, मानों जगत् ने प्रेमरूपी समुद्र में स्नान ही कर लिया है, इसका क्या कारण है ? और पृथ्वी रसा-धाररूप दीखती है, एवं सब मनुष्य उन्मत्त से प्रतीत होते हैं, इसका क्या कारण है ? तब माता ने उत्तर दिया कि हे बाल्यमुग्धहृदये ! बालिके ! तू नहीं जानती कि, श्रीगौराङ्ग महाप्रभु इस समय भक्तों में प्रेमावेश से नृत्य कर रहे हैं, उन्हीं का यह सब प्रभाव है ।। ८ ।।

रोमांचं स्फुटमंचते तरुगणो मन्दाकिनी मन्दता-
मालेख्यार्पितविग्रहा इव सुराः प्रेमाश्रुपूरं दधुः ।
कर्णौन्नत्यमहो विधाय हरिणाः कुंजेषु तस्थुश्चिरं
गौरे गायति सुस्वरेण मधुरां कण्ठेन कीर्ति हरेः ।। ९ ।।

और जिस समय श्रीगौराङ्गदेव सुस्वर कंठ से श्रीहरि की मधुर कीर्ति का गायन करते हैं, उस समय तरुगण रोमाञ्चित हो उठते हैं, मन्दाकिनी (गंगा) मन्दतापूर्वक बहने लगती है, देवता भी चित्र लिखे-से हो जाते हैं, एवं प्रेमाश्रु धारण करने लगते हैं, और हरिण भी ऊँचे कान करके चिरकालतक निकुञ्जों में खड़े के खड़े रह जाते हैं; यह, श्रीगौराङ्ग हरि की आश्चर्यमयी लीला है ।। ९ ।।

सौन्दर्येण सुरांगनाः सुरगणा लीलारसेनाऽमुना
माधुर्येण च बान्धवा हरिकथास्वादेन भक्ता हरेः ।
स्वर्वासेन च पापिनोऽपि नितरां वैराग्यतो योगिनः
श्रीमद्गौरमहाप्रभोः करुणया के के न सन्तर्पिताः ।। १० ।।

श्रीमन्महाप्रभुजी के लोकोत्तर सौन्दर्य से सुराङ्गनायें, लीलारस से देवगण, माधुर्य से बान्धवसमूह, हरिकथा से हरिभक्तजन, स्वर्गवास से

पीपीजन और अपूर्व वैराग्य से योगीजन भी सन्तप्त हो गये। अर्थात् श्रीगौराङ्ग महाप्रभु की अहैतुकी करुणा से कौन कौन तृप्त नहीं हुये ।।१०।।

त्यक्त्वा मित्रकलत्रपुत्रसहितं सर्वं जगद्वैभवं
लोका हन्त विरक्तभक्तपदवीं नित्यं भजन्ते कथम् ।
इत्थं यः कुतुकेन तान् रसयितुं भक्तावतारोऽभव-
ल्लोकातीतगुणोदयो विजयते स श्रीशचीनन्दनः ।। ११ ।।

"मित्र, पुत्र, कलत्र सहित सम्पूर्ण जगत् के वैभव को त्यागकर सत्संगी पुरुष, किस प्रकार विरक्त भक्तों के मार्ग का सेवन करते हैं" इस बात का अनुभव साधारण जनमात्र को कराने के लिये ही, जो, भक्तरूप में अवतीर्ण हुए हैं, उन लोकातीत गुणार्णव श्रीशचीनन्दन का वैभव सबसे ऊपर विराजमान है ।। ११ ।।

यो यं ध्यायति तस्य रूपसमतां प्राप्नोति सत्यं वचः
कीटोपि भ्रमरीं भजन् भययुतः साम्यं तदीयं गतः ।
तच्छंके व्रजखंजरीटनयनां हेमांबुजाभप्रभां
ध्यायन् हन्त निरन्तरं व्रजपतिः श्यामोऽपि गौरोऽभवत् ।।१२।।

"जो, जिसका ध्यान करता है,वह, उसीके समानरूप को प्राप्तकर लेता है" यह भागतादि शास्त्रों का वचन सत्य है; कारण कि कीट भी भ्रमरी का ध्यान करते करते भय के मारे उसके समान रूपवाला हो जाता हैं। अतः हमें तो प्रतीत होता है कि, श्रीव्रजराजनन्दन खञ्जरीट-नयना, हेमाम्बुजप्रभा, गौराङ्गी श्रीराधिकाजी का निरन्तर ध्यान करने के कारण, श्यामाङ्ग, भी गौराङ्ग हो गये हैं।। १२ ।।

त्वां संन्यासगतं विलोक्य भगवन् संन्यासमाप्तः कलिः
क्रूरां स्वां प्रकृतिं विहाय तदहं शंके स्वचातुर्यतः ।
नोचेत्साधुतया सह प्रतिदिनं धर्मस्य वृद्धिः कथं
लोभक्रोधपराभवाऽनृतगणो नास्मिन् कलौ लक्ष्यते ।। १३ ।।

हे भगवन् ! आपको सन्यास मार्गगत देखकर, अपनी क्रूर प्रकृत्ति को त्याग कर, कलियुग ने भी संन्यास ले लिया है। यह मैं अपने चातुर्य से अनुमान लगाता हूं। अन्यथा, साधुता के सहित, प्रतिदिन धर्म की वृद्धि क्यों हो रही है ? और लोभ, क्रोध, दूसरे का तिरस्कार करना, झूठ बोलना,

दम्भ, उल-छिद्रादि दुर्गुण, आपके अवतार के समय, इस कलियुग में भी नहीं दीखते हैं ।। १३ ।।

तावत् पापरतिर्भवेत्तदवधि क्रोधाऽनृतोपद्रव-
स्तावत्कालपराभवादपि भयं तावच्च मायाबलम् ।
मोहः पुत्रकलत्रमित्रभवने तावद् भवेद् दुष्टता
यावद् गौरमहाप्रभोः क्षणमपि स्यान्नैव संगो जनैः ।। १४ ।।

महाप्रभु के प्रिय भक्तों का सत्सङ्ग क्षणमात्र भी जबतक नहीं होता है, तभीतक जीव की पापों में रति रहती है। क्रोध, मिथ्याभाषण, आदि का उपद्रव सताता हैं, कालव्याल का भय बना रहता है, माया का जाल भी तभीतक चलता हैं; और पुत्र, कलत्र, मित्र, भवनादिक में मोह एवं दुष्टता भी तभीतक पिण्ड नहीं छोड़ती है ।। १४।।

लीलाऽपांगतरंगिता युवतयोप्यालिंगिताः किं तत-
श्चञ्चच्चामरचारुमारुतसुखं यत्सेवितं किं ततः ।
नित्यं मत्तमतंगजेन्द्रतुरगैर्यद्वाह्यते किं ततः
श्रीमद्गौरपदारविन्दमधुपैः संबंधगंधो न चेत् ।। १५ ।।

श्रीमद् गौराङ्ग पदारविन्द-मकरन्द-लुब्ध भक्तभृङ्गों के साथ यदि सम्बन्ध का गन्ध भी प्राप्त नहीं किया तो, लीलापूर्वक कटाक्षमोक्षण करने वाली युवतियों के आलिङ्गन से क्या लाभ? एवं चलते हुए सुन्दर चामर के चारु मारुत के सेवन से भी क्या लाभ? और नित्य प्रति मदमत्त हाथी घोड़ाओं की सवारी से भी क्या लाभ ? ।। १५ ।।

रे पाण्डित्यवितर्ककर्कशधियः ! श्राव्यं मदीयं वचो
नानावादविवादमादकरसैः कालो वृथा नीयते ।
वांछा चेद् भवतां मुरासुररिपोर्लीलारसाऽऽस्वादने
श्रीमद्गौरपदारविन्दयुगलं नित्यं तदा सेव्यताम् ।। १६ ।।

हे पाण्डित्य के गर्व के कारण शुष्क तर्क-वितर्कों से कर्कश वुद्धिवाले पण्डितो! मेरे वचन सुनो । आप सब लोग अनेक प्रकार के वाद-विवादमय मादक रसों से अपने सत्समय को व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो । यदि मुरारि भगवान् के लीला रसास्वादन में आप सब की अभिरुचि है तो, नित्य प्रति श्री गौरपदारविन्दयुगल की सेवा कीजिये ।। १६ ।।

केचित्त्वद्गुणगानतः स्मरणतः केचिन्महापापिनः
केचिन्मुक्तिमिताःकथाश्रवणतः केचित्प्रभोर्दर्शनात् ।
इत्थं वीक्ष्य समस्तपापिसुगतिं दूतान् विसर्ज्याऽधुना
प्रस्थाप्य स्वपिति स्वयं च ससुखं श्रीचित्रगुप्तं यमः।। १७ ।।

हे प्रभो ! कतिपय पापियों की मुक्ति तो आपके गुणगान से हो गई, और कुछ महापापीजन आपके चारुचरणों का स्मरण करने से संसार से छुटकारा पा गये, एवं अन्य, कथाश्रवण से, दर्शन से मुक्त हो गये। इस प्रकार तत्कालीन समस्त पापियों की सुगति देखकर, सब दूतों को विदाई देकर चित्रगुप्त को भी स्व-भवन के लिये प्रस्थापित करके, श्रीयमराज भी सुख-पूर्वक अपने भवन में शयन करते हैं ।। १७ ।।

केचिच्छब्दविचारचारुमतयः केचिच्च मीमांसकाः
केचित्काव्यरसावगाहनधियः केचित्तु नैयायिकाः ।
केचिद् ज्ञाननिधानमानसरताः केचित्तु पौराणिकाः
श्रीमद्गौरहरेर्वयं तु चरणांभोजैकबद्धस्पृहाः ।। १८ ।।

इस विचित्र विरञ्चि-प्रपञ्च में भिन्न-भिन्न रुचि के कारण, कुछ जन तो व्याकरण-शास्त्र के विशिष्ट पण्डित हैं; कतिपय मीमांसक हैं, तो कुछ, काव्यकला के रस में ही डूबे रहते हैं; अन्य, न्याय के अवच्छेदकावच्छिन्न में ही लगे रहते हैं, और कुछ, भक्तिरहित शुष्कज्ञान के तर्क-वितर्कों में ही अपने मन को लगाये रहते हैं; एवं कुछ, अष्टादश-पुराण वाटिका में भ्रमण करते हैं, किन्तु हम तो, श्रीगौरहरि के चरणारविन्दों में ही, अपनी लालसा लगाये बैठे हैं ।। १८ ।।

नित्यानन्दरसार्णवं स्वचरितैरद्वैतभावास्पदं
रामानन्दयुतं सनातनपदं रूपेण विभ्राजितम् ।
लीलालोलगदाधरं करुणया तं श्रीनिवासास्पदं
नित्यं मित्र! हरिप्रियाभिलषितं गौरञ्च कृष्णं भज ।।१९।।

हे मित्रवर्य ! आप, उन श्रीगौराङ्गदेव का भजन करो। जो कि, श्रीनित्यानन्द प्रभुजी के लिये रससमुद्रस्वरूप हैं, और अपने मधुर चरित्रों से श्रीअद्वैताचार्यजी के भी भावास्पद हैं, भावविभोर भक्तवर श्रीरामानन्द-रायजी से युक्त हैं, श्रीसनातनगोस्वामीजी के पूज्यस्थान हैं, श्रीरूपगोस्वामी-जी से सुशोभित हैं, लीलारसास्वादी श्रीगदाधर पण्डितजी को साथ रखते

हैं, और जो अपनी निरपेक्ष कृपालुता से पण्डितवर्य श्रीनिवासाचार्यजी के तो पूजनीय प्रतिष्ठित श्रीविग्रहस्वरूप हैं।

श्रीकृष्णपक्षे—हे प्रिय मित्र! आप, उन श्रीकृष्णचन्द्र का भजन करो, जो कि, नित्य ही आनन्दरस के समुद्र हैं, अपनी मधुरलीलाओं से अद्वैत-वादियों के भी भावास्पद हैं, बलराम प्रभृति गोप एवं श्रीराधिका प्रभृति गोपियों से ही अपने को आनन्द युक्त मानते हैं, अनादि हैं, अनन्य सिद्ध-स्वरूप माधुर्य से देदीप्यमान हैं, युद्धक्रीड़ा में चञ्चल कौमोदकी नामक गदा को धारण करते हैं, अपनी कृपालुता से श्रीजी के निवास स्थान हैं ॥१९॥

भिन्दन्पापपरंपरां प्रतिदिनं छिन्दन्कलेर्वैभवं
निन्दन्भक्तिविहीनदीनपदवीं विन्दन्नपूर्वां मुदम्।
क्रन्दन्भक्तिरसे कदापि च हसन् स्पन्दन् हरिं गापयन्
वन्दन्भक्तिरसापगां विलसति श्रीगौरचन्द्रो हरिः॥ २०॥

प्रति दिन पाप की परम्परा का भेदन करते हुए, कलि के वैभव को छेदन करते हुए, भक्ति से विहीन दीनहीन-जनों के मार्ग की निन्दा करते हुए, अपूर्व आनन्द का लाभ करते हुए, एवं कभी-कभी भक्ति रस में रुदन करते हुए, हँसते हुए, नृत्य करते हुए, श्रीहरिगुणों का गान करते-कराते हुए, भक्ति की रसमयी नदी की वन्दना करते हुए, श्रीगौरचन्द्र हरि, नित्य नवद्वीप में विलास करते रहते हैं॥ २०॥

भक्तिं कन्दलयन् कलिं कवलयन् प्रेमाब्धिमुद्वेलयन्
मोहं व्याकुलयन् रसं च कलयन् लोभं च निर्मूलयन्।
पापं निर्बलयन् धृतिं सबलयन् कल्लोलयन् मानसं
देवः कोऽपि चमत्कृतो विजयते चैतन्यचन्द्रः प्रभुः॥ २१॥

भक्तिलता को अंकुरित करते हुए, कलि को कवलित करते हुए, प्रेमसमुद्र की तरंगों को बढ़ाते हुए, मोह को व्याकुल करते हुए, जनमात्र के लिये भक्तिरस का दान करते हुए, लोभ को निर्मूल करते हुए, पाप को निर्बल बनाते हुए, भक्तों के धैर्य को सबल बनाते हुए, मानसिक भक्तिरस की तरङ्गों को वर्धित करते हुए, कोई अचिन्त्य चमत्कारयुक्त श्रीचैतन्यदेव प्रभु सर्वोपरि विराजमान हैं॥ २१॥

वह्निः शीतलतां व्रजेद् यदि गिरिः स्याच्चञ्चलो वायुना
पाथोधिर्मरुदेशतामुदयते सूर्योऽपि चेत्पश्चिमे।

अन्यत् किं कथयामि धातृरचना चेद् वैपरीत्यं भजेत्
तर्हि श्रीगुरुगौरचन्द्रविमुखे प्रेम्णो लवस्तोदयः ।। २२ ।।

अग्नि भले ही शीतल हो जाय, पर्वत भी वायु से चञ्चल हो जाय, समुद्र भी मरुदेश बन जाय सूर्य भी चाहे पश्चिमदिशा में उदित होने लग जाय, और विशेष तो क्या कहें ? चाहे विधाता की सारी रचना ही पलट जाय, अर्थात् असम्भव सम्भव हो जाय; परन्तु श्रीगुरुगौरचन्द्र से विमुखजन के हृदय में लवमात्र भी प्रेम का उदय नहीं हो सकता ।। २२ ।।

आरोढं कनकाचलस्य शिखरं पंगुर्यथा वांछति
हस्ताभ्यां विधुमण्डलं लघुजनोप्यादातुमाकांक्ष्यति ।
कैलासं श्वसिताऽनिलेन च यथाप्युद्धर्तुमुद्वीक्षते
गन्तुं हन्त तथैव गौरविमुखो वैकुण्ठमुत्कण्ठते ।।२३।।

पंगुजन, जिस प्रकार सुमेरुपर्वत के शिखरपर चढ़ना चाहता है, वामन-पुरुष भी जिस प्रकार अपने छोटे-छोटे हाथों से ही चन्द्रमण्डल को प्राप्त करना चाहता है, और कोई निर्बल मूर्खजन, जिस प्रकार कैलास-पर्वत को अपनी स्वासवायु से ही उड़ाना चाहता हैं; इसी प्रकार श्रीगौर-चन्द्र विमुखजन भी वैकुण्ठ में जाने के लिये उत्कण्ठा करता है, यही बड़े खेद की बात हैं ।। २३ ।।

इतःश्लोकत्रये मन्दाक्रान्ता ।

ज्ञानध्यानव्रतजपतपोयज्ञयोगादिकानि-
क्षीणान्यन्यान्यपि कलियुगे साधनानि प्रमादात् ।
चेतश्चिन्ता तदपि न मनाक् मित्र ! कार्या कदापि
यच्चैतन्यप्रकटमहिमा वर्ततेऽद्यापि लोके ।।२४।।

ज्ञान, ध्यान, व्रत, जप, तप, यज्ञ, योगादिक सब साधन यद्यपि प्रमाद के कारण कलियुग में प्रायः नष्ट हो चुके हैं, तथापि हे मित्रवर्य चित्त ! तुम किंचित् भी चिन्ता न करो, कारण कि श्रीचैतन्यदेव की महिमा, आज भी लोक में प्रगट विद्यमान है ।। २४ ।।

जाता कीर्तिर्भुवि विरचिता स्वर्गसोपानपंक्तिः
त्रस्ताः पापाः सपदि वपुषो दूरयात्रां वितेनुः ।
स्नातं राधाप्रणयसरसि व्याधिमुक्तेन तेन
येन भ्रान्त्याप्यहह गदितं हन्त चैतन्यनाम ।।२५।।

सब से बड़े हर्ष की बात तो यह है कि, जिस जन ने भ्रन्ति से भी यदि श्रीचैतन्यदेव के नाम का उच्चारण करलिया तो स्वर्ग की सोपानरूप उसकी कीर्ति तो भूमि में फैल गई, पाप भी डरकर उसके शरीर से दूसरी जगह यात्रा कर जाते हैं, और श्रीराधा-प्रेमसरोवर में भी उसने स्नान कर लिया; अतः सब व्याधियों से तो वह, सर्वदा के लिये मुक्त हो गया ॥ २५ ॥

विद्यादाता जगति जयति श्रीमहेशो नराणां
संपद्दाता भवति वरुणो मुक्तिदाता मुकुन्दः ।
दाता सूर्यो जगति महसः स्वर्गदाता सुरेशः
श्रीचैतन्यप्रियमिह विना प्रेमदाता न कश्चित् ॥२६॥

जगत् में मानवमात्र के लिये, विद्यादाताओं में श्री महादेव ही सर्वोपरि हैं, सम्पत्तिदाता वरुण हैं, मुक्तिदाता मुकुन्द हैं, प्रकाशदाता सूर्य हैं, स्वर्गदाता सुरेन्द्र हैं, परन्तु श्रीचैतन्य प्रिय भक्तों के बिना प्रेमप्रदाता कोई भी नहीं हैं ॥ २६ ॥

गौरपादांभोजबहिर्लापिका ।

मन्दाक्रान्ता ।

पूज्याग्रे का भवति विदुषां पर्वयात्रोत्सवेषु
पंगोः संबोधनमहह किं शीतलं वस्तु किं स्यात् ।
विद्वांसः कं जगति सततं सृष्टिकर्तारमाहुः
किं संसारव्यतिकरहरं विज्ञवर्या वदन्ति ॥२७॥

प्रश्न–विद्वानों के लिये पर्व, यात्रा, महोत्सवादि में, सर्वप्रथम पूजनीय कौन होती है ? उ०–(गौः) प्र०–पंगुका, सम्बोधन, अर्थात् असाधारण ज्ञापक चिह्न क्या होता है ? उ०–(अपाद) प्र०–शीतल वस्तु क्या होती है ? उ०–(अम्भः, अर्थात् जल) प्र०– संसार में विद्वज्जन प्रतिकल्प में सृष्टिकर्ता किसको कहते हैं ? उ०– (अम्भोज, अर्थात् ब्रह्माजी को) तात्पर्य यद्यपि श्रीब्रह्माजी की उत्पत्ति कमल से ही प्रसिद्ध है, तथापि यहाँ, जल से जो स्वीकार की है, वह, कल्पभेद से है। अत्र प्रमाणन्तु [**गर्भोदशायिनोऽस्याभूज्जन्म नाभिसरोरुहात् । कदाचित् श्रूयते नीरात् तेजो वातादिकादपि ।** लघु भा० १७] प्र०– भगवत् भागवततत्त्वज्ञ-जन, संसार में जन्म-मरणके चक्कर को छुड़ानेवाली कौनसी वस्तु बताते हैं ? उ०– (गौरपादाम्भोजम्; अर्थात् श्रीगौराङ्ग-महाप्रभु के चरणारविन्द को ही संसारतारक कहते हैं) ॥ २७ ॥

इतःश्लोकद्वये स्रग्धरा ।

रंभास्तंभाभिरामं सितहसितरुचिं कुण्डलाऽऽक्रान्तगण्डं
शीतांशुस्फीतवक्त्रं मदनमद-नमच्चंचलापांगरम्यम् ।
कन्दर्पं दर्पयन्तं निजनववपुषो हेमगौरच्छटाभिः
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रं कनकशुचिरुचिं सावधूतं स्मरामि ।।२८।।

जिनके हस्ता-पदादि श्रीअंग, कदली स्तम्भ के समान उतराव चढ़ाव वाले परम सुन्दर हैं, जिनका हास्य स्वच्छ मनोहर है; दोनों कपोल, कुण्डलों की परछाँई से सुशोभित हैं, एवं पूर्ण-चन्द्रमा से भी जिनका मुखारविन्द सुन्दर है, अर्थात् जिस मुख में कन्दर्पदर्पदलन कटाक्ष मोक्ष विद्यमान हैं, और अपने नवीन श्रीविग्रह की छटाओं से कन्दर्प को भी जो दर्पित करनेवाले हैं, एवं—गुणविशिष्ट नव हेमकान्ति-क्रमनीय श्रीचैतन्यचन्द्र का मैं, श्रीनित्यानन्द प्रभुपाद सहित स्मरण करता हूँ ।। २८।।

केचिद् भक्ताः प्रमोदाद् विदधति सरवांल्लोलदंगान्मृदंगान्
केचित्प्रेमाश्रुपूरैर्नयनविगलितैः प्लावयन्ते त्रिलोकम् ।
केचिद् गर्जन्ति वर्षाघनगणतरला वादयन्तो घनानि
तेषां मध्येऽतिहर्षात्कलिमलदमनो गौरचन्द्रो ननर्त ।।२९।।

कुछ भक्तजन तो प्रेमातिरेक से गंभीर ध्वनिवाले मृदङ्ग बजा रहे हैं, कतिपय भक्तजन नेत्रों से झरते हुए प्रेमाश्रुप्रवाह से त्रिलोकी को आप्लावित कर रहे हैं. और कितने ही झाँज मजीरा आदि बजाते हुए प्रेमावेश में वर्षाकालीन बादलों के समान गरज रहे हैं। उन भक्तों के मध्य में, कलिमलदमन श्रीगौरचन्द्र हर्षातिरेक से नृत्य करते हैं ।। २९ ।।

इतःश्लोकत्रये पृथ्वी ।

अहो ! कलियुगव्यथा-व्यथितमानसा मानुषाः !
यदि प्रबलकालजामतितितीर्षवो वेदनाम् ।
तदा प्रणयपद्धति-प्रकटनैकदीक्षागुरुं
सदासुखकरं मुदा भजत गौरपादांबुजम् ।। ३० ।।

अयि कलिव्यथा व्यथित चित्तवाले पुरुषो ! यदि आप सब, सर्व प्रबल काल से जायमान जन्म-मरण, जरा-दुःखादिरूप वेदना को पार करना चाहते हो तो हरि विषयक प्रेममार्ग के सर्वप्रथम दीक्षागुरु सर्व सुखदायी श्रीगौरपादाम्बुज का हर्ष पूर्वक भजन करो ।। ३० ।।

शचीजठरसागरात् सपदि नाऽभविष्यत् सखे !
स गौडकुलचन्द्रमा यदि दुरन्तभावे कलौ ।
तदा मदनमोहन-श्रवणकीर्तनप्रक्रिया-
रसज्ञपदवीं परां जगति कोऽगमिष्यज्जनः ॥ ३१ ॥

हे सखे ! इस दुरन्त भावयुक्त कलियुग में, यदि श्रीशची-जठरसागर से गौरचन्द्रमा का प्राकट्य न होता तो, भगवान् श्रीमदनमोहन के कथा श्रवण, कीर्तनादिरूप साधनभक्ति की प्रक्रिया के रसज्ञ एवं प्रेमलक्षणाभक्ति के मर्मज्ञ भक्तों के मार्ग को संसार में कौन जन जान सकता था और प्राप्त कर सकता था ? ॥ ३१ ॥

विदग्धजनसेविता परमहंसबद्धाऽऽदरा
सदा घनरसोन्नता कुवलयप्रमोदोदया ।
अशेषजनतापहा मम मनोमरुप्रांगणे
तव प्रणयवर्जिते वहतु कीर्तिकल्लोलिनी ॥ ३२ ॥

हे प्रभो ! चतुरशिरोमणिजन जिसका सेवन करते हैं, परमहंसों का जिसके प्रति विशेष आदर है, और जो सदैव प्रेम लक्षणाभक्ति रस से भरी हैं, भक्तरूप कमलों के लिये आनन्ददायिनी है, अथवा जो भूतलमात्र को प्रमोद प्रकाशिका है, ऐसी जनमात्र तापहारिणी आपकी कीर्तिरूप नदी, आपके प्रेम से वर्जित—मरुतुल्य मेरे मनः प्राङ्गण में सदैव बहती रहै ॥३२॥

इतःश्लोकचतुष्के शिखरिणी ।

प्रभो ! त्यक्त्वा सर्वं यम-नियम-योगादिकमहो
कथां ते साधूनां सदसि सकृदाकर्ण्य सहसा ।
भवन्तं प्राप्तोऽहं शरणमथ न त्वं कृपयसि
त्वदीयानां कीर्तेस्तव च भविता हास्यमधुना ॥ ३३ ॥

हे प्रभो ! आपके रहस्य को जाननेवाले साधुओं की सभा में आपकी अहैतुकी दयालुता की कथा एकबार सुनकर सहसा यम, नियम, योगादि सब साधनों को त्यागकर हर्षपूर्वक आपकी शरण में आया हूं, ऐसी अवस्था में भी यदि आप कृपा न करेंगे तो आपके भक्तों की और आपकी कीर्ति की भी, अभी हँसी हो जायगी (अतः मेरे ऊपर तो पहले ही कृपा कर दीजिये, प्रभो !) ॥ ३३ ॥

हताः श्रीकृष्णेन प्रकटपदमापुर्दनुसुताः
प्रभौ नैतच्चित्रं चतुरहृदि वासं विदधति ।

इमां दृष्टवा लीलां तव भुवि न को विस्मयपदे
पदं धत्ते यत्त्वं प्रणयपयसि स्नापयसि तान् ।।३४।।

श्रीकृष्ण भगवान् ने जिन-जिन राक्षसों को मार दिया, वे, यद्यपि वैकुण्ठपद को पा गये, तथापि हे प्रभो ! आपके मर्मज्ञ भक्तों के हृदय में ये सब बातें आश्चर्यमय प्रतीत नहीं होतीं, और आपकी इस (जगाई, माधाई, काजी आदि दुष्टोद्धारमयी) अद्भुत लीला को देखकर कौन विस्मित नहीं होता ?, कारण कि, भगवान् तो दुष्टों को अपने शस्त्रों से मारकर केवल निज धाम ही देते हैं; परन्तु आप तो केवल कृपादृष्टि से ही दुष्टता दूर करके, उन दुष्टों को प्रेम सरोवर में स्नान भी करवा देते हो, अर्थात् वे दुष्ट, अपनी दुष्टता को त्यागकर, परम रसिकभक्त बन जाते हैं बस, यही आपकी लीला में आश्चर्यजनकता है ।। ३४ ।।

न योगे संयोगो न च जपतपः-साधनबलं
न चोत्संगस्तुंगैः क्वचिदपि तरंगैस्त्रिपथगैः ।
न च ज्ञानाशंसैरपि परमहंसैः सह रतिः
परं ते कारुण्य-स्मरणवशतो जीवति जनः ।।३५।।

योग से तो हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, जप-तप आदि साधनों का बल भी हम में नहीं, श्रीगंगा जी की तुंग (उच्च) तरङ्गों से भी हमारी विशेष आसक्ति नहीं, भक्तिविहीन केवल शुष्क-ज्ञानोपदेशक परमहंसों से हमारी प्रीति नहीं; किन्तु प्रभो ! हमारे जैंसे जन तो आपकी करुणा का स्मरण करके ही जीवन धारण कर रहे हैं ।। ३५ ।।

न वेदानां भेदा न च जपतपस्त्यागनियमाः
न च स्नानं ध्यानं न वनवसतिर्मौनमपि नो ।
न संन्यासन्यासो न च सकलतीर्थाटनमपि
पुनाति स्वच्छन्दं जगति मनुजं गौरविमुखम् ।।३६।।

श्रीगौराङ्ग-महाप्रभु से विमुखजन को तो चारों वेद, जप, तप, त्याग, नियम, त्रिकाल स्नान, ध्यान, तीर्थवास, मौनव्रत, संन्यास, सकलतीर्थाटन आदि साधन समुदाय भी जगत् में स्वतन्त्ररूपेण पवित्र नहीं करते हैं ।।३६।।

अन्तर्लापिका ।
इतःश्लोकद्वये मुग्धसौरभम् ।

कं व्यथाजनकं वदन्ति दधुर्विरक्तगणाश्च कं
कं यजन्ति जना नदीजलचारिणं च वदन्ति कम् ।

दुर्धरं निगदन्ति कं रिपुभिः शिवश्च जघास कं
प्रेमदं कमुदीरयन्ति जनाः "शचीसुतनागरम्" ॥३७॥

प्र० जागतिक जन व्यथाजनक किस को कहते हैं उ०– शरम् (बाण को) प्र०– विरक्तजन किस को धारण करते हैं ? उ०– चीरम् (चीर को) प्र०– मनुष्य किस को पूजते हैं ? उ०– सुरम् (देवता को) प्र०– नदी के जलपर चलनेवाला किस को कहते हैं ? उ०– तरम् (नौका को) प्र०– शत्रुओं के द्वारा भी दुर्धर किस को कहते हैं ? उ०– नारम् (जलसमूह को अथवा जनसमूह को) प्र०– शिवजी ने किस को खाया ? उ०– गरम् (जहर को) प्र०– जनमात्र को प्रेमदाता किस को कहते हैं ? उ०– शचीसुतनागरम् (श्रीशचीनन्दन को) ॥ ३७ ॥

चारुचंचललोचनांचलवक्त्रबिंबविनिर्जितो
लज्जया न शशी दिवा प्रकटो हरेर्भवति क्वचित् ।
यामिनीसमयेऽपि स स्मरते यदा स्वविडंबनं
लज्जयैव तिरोदधाति घनांचलेन मुखं निजम् ॥३८॥

भगवान् श्रीचैतन्यदेव के सुन्दर और चंचल लोचनरूप अञ्चल से युक्त मुखारविन्द से पराजित होकर चन्द्रमा लज्जा के मारे दिन में प्रगट नहीं होता है; और रात्रि समय में भी जब अपने तिरस्कार की याद करता है तो, लज्जा से अपने मुख को घनरूप अञ्चल से ढक लेता है ॥ ३८ ॥

इतःश्लोकत्रये मालिनी ।

दनुतनयकुटुंबक्षेत्रदावाग्नितुल्याः
कति जगति बभूवुर्नावतारा मुरारेः ।
प्रणयरसतरंगस्नापितस्थावरान्तः
कथय कथय कोऽन्यस्तं विना गौरचन्द्रम् ॥३९॥

दैत्य-कुटुम्बरूप क्षेत्र को भस्म करने के लिये, दावाग्नि तुल्य भगवान् के कितने ही अवतार संसार में नहीं हो गये हैं क्या ? परन्तु कहिये कहिये मित्र ! उन श्रीगौरचन्द्र के बिना जड़पर्यन्त को प्रेमरस की तरंगों में स्नान कराने वाला कौन हुआ है ? ॥ ३९ ॥

यदवधि सखि भूमौ गौरचन्द्रोऽवतीर्ण-
स्तदवधि किल देवास्तत्यजुः स्वर्गलोकम् ।
नटनचटुलगौरप्रेक्षणप्राप्तदिव्याऽ-
वयवमनुजराजीवाससंकीर्णदेशम् ॥४०॥

अरी सखी ! भूमितलपर जबतक श्रीगौराङ्ग देव अवतार धारण करके विद्यमान रहे, तबतक देवताओं ने स्वर्ग को भी त्याग दिया। कारण कि नृत्यकला-कुशल श्रीगौराङ्गदेव को कीर्तनानन्द में नृत्य करते हुए देखने से प्राप्त हो गये हैं दिव्य अवयव जिनको ऐसे मनुष्यों के कारण स्वर्ग में भीड़ हो गई। तात्पर्य यह है कि, स्वर्गीय देव तो प्रभु दर्शनार्थ मानवदेह धारणकर नवद्वीप में आगये, और संसारीजन प्रभु-दर्शन पाकर जीवन काल यापन करके स्वर्ग को चले गये ॥ ४० ॥

जगदतुलविहारे सर्वसंसारसारे
प्रणयरसकदंबे क्षिप्तकोटीन्दुबिंबे।
अमलकमलमाले श्रीजगन्नाथबाले
मम रतिरतिपुण्या नित्यमेवाऽस्तु धन्या ॥ ४१ ॥

जगत् में अतुलनीय विहार करनेवाले, संसार के सारस्वरूप प्रणयरस-समूहरूप, कोटीन्दुलावण्य से विशिष्ट श्रीविग्रहवाले, अमल कमलों की माला धारण करने वाले, श्रीजगन्नाथ मिश्र के बालक में, परमपवित्र एवं धन्य हमारी प्रीति सदा ही बनी रहे ॥ ४१ ॥

इत:श्लोकचतुष्के वसन्ततिलका।

गौरेतिवर्णयुगलं पतितं न कर्णे
चित्तं न वित्तमिव वांछति गौरपादम्।
येषां महाद्भुतमिदं कलयन्तु तेऽपि
संसारसिन्धुतरणाय समुल्लसन्ति ॥ ४२ ॥

अरे भाइयो ! एक यह आश्चर्य की बात सुनो कि, जिनके कानों में "गौर" ये दो अक्षर भी कभी पडे नहीं, और जिनका चित्त, वित्त के समान श्रीगौरपादपद्म को चाहता नहीं, ऐसे जन भी संसार-सागर से पार जाने के लिये उत्सुक हो रहे हैं, यह कदापि सम्भव नहीं है ॥ ४२ ॥

चेन्मानयन्तु वचनं मम सावधाना
बद्धादराश्च कलयन्तु तदा वदामि।
योगादिकं सकलमेव विहाय यत्ना-
च्चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुताऽनुरागम् ॥ ४३ ॥

ऐसे जनों से मेरा यही कहना है कि यदि मेरे वचनों में श्रद्धा है तो, सावधान होकर श्रवण करें। श्रमसाध्य योगादि सब साधनों को त्यागकर, श्रीचैतन्यदेव के श्रीचरणों में ही यत्नपूर्वक अनुराग करो ॥ ४३ ॥

चैतन्यचन्द्र ! करुणार्णव ! माधवेति
गौरांगदेव ! रससागर ! सुन्दरेति ।
भक्तोत्सवेति च शचीतनयेति कण्ठं
नामावली तव मदीयमलंकरोतु ।। ४४ ।।

हे श्रीचैतन्यचन्द्र ! हे करुणार्णव ! हे माधव ! हे गौरांगदेव ! हे रस-सागर ! हे त्रिभुवनसुन्दर ! हे भक्तवत्सल ! हे शचीतनय हे प्रभो ! इस प्रकार की आपकी नामावली मेरे कण्ठ को सदैव अलंकृत करती रहे ।।४४।।

पूर्णा सदा घनरसेन विग्धसेव्या
छायाधिका जनसमूहकृताभिलाषा ।
संसारघोरपथि जीवनदायिनी सा
प्रेमप्रिया हरतु ते मम चित्ततृष्णाम् ।। ४५ ।।

जो, सदैव श्यामघन रस से परिपूर्ण है, चतुरजन जिसका सेवन करते हैं, जो विशिष्ट कान्ति युक्त है, भक्तजनसमूह जिसकी सदैव अभि-लाषा करते रहते हैं, और संसाररूपी घोर मार्ग में जो जीवनदायिनी है, हे प्रभो ! एवं पूर्वोक्त गुणविशिष्टा आपकी प्रेमलक्षणा भक्तिरूपा प्रिया मेरे चित्त की तृष्णा को हर ले ।।४५।।

इत:श्लोकत्रये पुष्पिताग्रा

बकुलमुकुलकुण्डलेन गण्ड-
स्थलगमनेन विलोललोचनान्तः ।
क्वचिदपि न सुवर्णगौरवर्णो
हरिरवलोकि धिगस्तु जीवनं तत् ।। ४६ ।।

मोरछली की कलिकाओं के कुण्डलों की परछाँहीं, दोनों कपोलों में पड़ने के कारण, चञ्चल नेत्रप्रान्तवाले, नवसुवर्ण गौरवर्णवाले श्रीहरि का यदि जीवनभर में कहीं कभी भी दर्शन नहीं किया तो, उस जीवन को ही धिक्कार है ।।४६।।

तदवधि विविधप्रयासपुंजो
भुवि भववैभवमस्तु तावदेव ।
यदवधि कलिकुंजरैकमर्दी
वितरति गौरहरिः पदं न चित्ते ।। ४७ ।।

अनेक प्रकार का प्रयास पुंज तभीतक है, और भूमि में जन्म-मरण-रूप वैभव भी तभीतक सताता है, जबतक कि, कलिकुञ्जर-मदमर्दनकारी श्रीगौर-सिंह, जीवकी हृदयरूप गुहा में पदार्पण नहीं करता ।।४७।।

कनककमलगौर ! केन वर्ण्य-
स्तवमहिमा विधिनाऽपि दुर्विभाव्यः ।
विलसति किल कोऽपि यत्प्रभावो
भुवि पतिता अपि यद्गतास्त्रिणाकम् ॥ ४८ ॥

हे सुवर्णकमलवत् गौरकान्त भगवन् ! ब्रह्मादि देवों के दुर्ज्ञेय, आप की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ? जिसका कि विचित्र प्रभाव भूतलपर विद्यमान है; पतित जीव भी जिसके कारण वैकुण्ठगामी हो गये हैं ॥ ४८ ॥

इतःश्लोकद्वये प्रहर्षिणी

गौरांग-स्नपिततला मुदाऽश्रुनीरै-
स्तत्पादस्थितनखरत्नकान्तियुक्ता ।
रोमांचं नवतृणकैतवाद्दधाना
वैकुण्ठं हसति महोत्सवा धरित्री ॥ ४९ ॥

श्रीगौराङ्ग-महाप्रभु के प्रेमाश्रुओं से जिसका तलप्रदेश स्नान किये हुए हैं, और प्रभुपाद-स्थित नखरत्न-कान्तियों से जो युक्त है, नवीन तृणों के बहाने रोमाञ्च धारण करनेवाली महोत्सवरूप पृथिवी, वैकुण्ठ की हँसी करती है कि, देख ! अजन्मा ने जन्म लेकर, इस प्रकार प्रेमोन्मत्त होकर तुमपर कभी भी नृत्य नहीं किया होगा; अतः आज मुझसे बड़भागिनी कौन है ? ॥ ४९ ॥

किं प्रेम्णः प्रकटतरः प्रवाह एष
कन्दर्पः किमयमनंगतां जिहानः ।
किं वायं शुचिरस एव मूर्तिधारी
विज्ञानामिति मतयः स्फुरन्ति गौरम् ॥ ५० ॥

विज्ञजन श्रीप्रभु का दर्शन कर, अपने-अपने मनमें इस प्रकार विचार करते हैं कि- क्या यह, प्रेम का प्रकटतर प्रवाह है ? किंवा मूर्तिमान् कामदेव ही दृश्यमान है ? अथवा श्रृङ्गाररस ही मूर्ति धारण करके प्रगट हो गया है क्या ?॥ ५० ॥

इतःश्लोकचतुष्के भुजंगप्रयातम् ।

ननर्त प्रियाभिः कलिन्दात्मजायास्तटे नन्दसूनुर्मिलिन्दादरे यः ।
स एवाद्य मन्दाकिनीनीरतीरे स्वभक्तैर्हि नृत्यत्यहो गौरमूर्तिः ॥५१॥

भ्रमरगण जहाँ आदरपूर्वक गूंजते रहते हैं, ऐसे कमनीय यमुनाजी के कूलपर जिस प्रभु ने गोपियों के साथ नृत्य किया था, वे ही प्रभु कृष्ण-चन्द्र आज गौरवपु धारण करके, अपने प्रिय भक्तों के सहित, श्रीगंगाजी के तोरपर नृत्य कर रहे हैं। प्रभु की सभी लीलायें भक्तों के हर्षप्रद हैं ॥५१॥

न चेद् गौरमीशं स्फुटैश्वर्ययुक्तं, वदन्त्यज्ञसंघास्तदा मा वदन्तु।
उलूकैर्यदि प्रेक्ष्यते नार्कबिंबं, दिनेऽपि प्रबुद्धांबुजं तत्क्षतिः का ॥५२॥

प्रकट ऐश्वर्ययुक्त श्रीगौराङ्गदेव को भी यदि अज्ञानीजन ईश्वर नहीं कहते हैं तो मत कहो। उनके न कहने से उनकी ईश्वरता की कोई हानि नहीं, जैसे कि कमलों को खिलानेवाले सूर्य को दिन में भी यदि उलूक नहीं देख पाते हैं तो, इस में सूर्य की कोई क्षति नहीं ॥ ५२ ॥

समुल्लंघ्य लज्जानदीं धैर्यवृत्तिं, विभिन्दन्बलेनान्तरं मे प्रविश्य।
अहो चित्तचिन्तामणिं कोऽपि चौरो, जहाराशु गौरो वयं तन्न विद्मः॥५३॥

लज्जारूप नदी को लाँघकर, धैर्य की भींत को तोड़ कर, बलपूर्वक मेरे अन्तःकरणरूप गृह में धँस कर, गौर वर्ण का कोई चोर, शीघ्र ही मेरे चित्तरूप चिन्तामणि को चुराकर चला गया। आश्चर्य तो यही है कि, अब भी उस चोर को हम भलीभाँति जानते नहीं हैं ॥ ५३ ॥

कदा श्रीनवद्वीपमध्ये विलोक्य, भवज्जन्मपुण्यस्थलं गौरचन्द्र !
प्रमोदेन तद्वासिनो भक्तवर्यान्, प्रभो हन्त पृच्छाम्यहं त्वच्चरित्रम् ॥५४॥

अहह ! हे प्रभो गौरचन्द्र ! हमारे इस जीवनकाल में ऐसा शुभ अवसर कब उपस्थित होगा; जब कि मैं श्रीनवद्वीप के मध्य में आपके पुण्यमय जन्म स्थल को देख कर, हर्षपूर्वक वहां के रहनेवाले भक्तों से आप का चरित्र पूछूंगा कि, प्रभु ने यहाँ कौन-कौन लीलायें किस-किस प्रकार की थीं ॥ ५४ ॥

इतःश्लोकषट्के तोटकम्।

बलिना कलिना जगदेव जितं, सह योगतपोव्रतदानयमैः।
न जितास्ति परं जगति प्रकटा, नवकांचनगौरहरेः करुणा ॥५५॥

इस बलबान् कलिकाल ने योग, तप, व्रत, दान, यम, नियमादि साधनों सहित सम्पूर्ण जगत् को जीत लिया है। किन्तु जगद् विदिता नवकांचन गौरहरि की करुणा उस से नहीं जीती गई है ॥ ५५ ॥

प्रमदाः समदास्तनयः सनयः, सधनं भवनं च कलाः सकलाः।
मरणे न हि रक्षति कोऽपि ततश्चरणं शरणं व्रज गौरहरेः ॥५६॥

यौवन मदोन्मत्त प्रमदायें, विनययुक्त पुत्र, धनपूर्ण भवन, और सम्पूर्ण कलायें; इन में से कोई भी मृत्यु के समय रक्षा नहीं कर सकता हैं; अतः हे भाई ! यदि तुम जन्म मरण के दुःख से सदैव के लिये छुटकारा चाहते हो तो, श्रीगौरहरि की चरण शरण में चले जाओ ।। ५६ ।।

विधिना विधिना परिचर्य विभुं कलिता कलितापहरी करुणा ।
भवतो भव तोषयुतस्त्वमतश्चरणा चरणाज्जितपद्मतते ! ।।५७।।

कमलकान्ति पराजयकारि चरणयुगल विशिष्ट प्रभो ! विधिपूर्वक अन्तर्यामी प्रभु की बहुत दिन पूजा करनेपर दैवयोग से आज कलितापहारिणी आप की करुणा प्राप्त की है अतः आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये ।। ५७ ।।

त्वयि सद्विनयेन न येन रती, रचितापि न तेन नतेन कृती ।
अपि सौमनसो मनसो न रतिर्यदि तज्जननं जननन्दित ! धिक् ।।५८।।

सुन्दर विनयगुणविशिष्ट पुरुषों ने भी यदि आप में प्रीति नहीं की तो केवल उस विनयगुणमात्र से वह कुशल नहीं समझा जायगा । और हे जननन्दित ! भगवन् ! यदि सुन्दरमनवाले पुरुष का मन आप में नहीं लगा तो उस के जन्म को ही धिक्कार है ।। ५८ ।।

नवकांचनकोमलताऽमलता, भुविभान्ति विलासकलाः सकलाः ।
रतिरध्वनि तच्चरणे चरणे, मरणेऽपि दृढा भवताद् भवताम् ।।५९।।

हे नवकांचनगौर ! प्रभो ! आपके अनन्य भक्तों के ध्यान मार्ग में जिन चरणों की कोमलता, निर्मलता, सम्पर्ण चलनचातुरी आज भी भूतलपर दृष्टिगोचर होती है । उन्हीं आपके श्रीचरणों में मरण समय में भी मेरी दृढ़ प्रीति बनी रहे ।। ५९ ।।

कमलंकुरुते न दलत्कमलं, चरणं तव चारुतराऽऽचरणम् ।
परमापि यतो मुदमाप रमा, रमणीयगुणाप्यथ का रमणी ।।६०।।

विकसित-कमल के समान एवं सुन्दर आचरण करनेवाला आपका श्रीचरण किस भक्त को अलंकृत नहीं कर देना । जिस चरण को प्राप्तकर रमणोय गुणवाली सर्वश्रेष्ठ रमा भी परमानन्दित हुई हैं, अतः अन्य कौन रमणी सुखी न होगी ? ।। ६० ।।

इतःश्लोकचतुष्के द्रुतविलंबितम् ।

त्यजत रे विषयान् विषवत् सदा, भजत कांचनवंचनकृद्द्युतिम् ।
व्रजत रे शरणं चरणं हरेः, सृजत गौरपदे रतिमुज्ज्वलाम् ।।६१।।

अरे भाइयो ! विषयों को तो सदैव विषवत् त्याग दो और कांचन-तिरस्कारि कान्तियुक्त प्रभु का भजन करो । श्रीहरि के श्रीचरणों की शरण में चले जाओ, एवं श्रीगौर पादपद्म में निर्मल प्रीति उत्पन्न कर लो ॥६१॥

कमलकोमलकोरकमालिकं, तिलकशोभित-चारुसमालिकम् ।
वदननिर्जितफुल्लसरोरुहं, भजत गौरममंदशिरोरुहम् ॥६२॥

कमल की कोमल कलिकाओं की माला धारण करनेवाले, तिलक से शोभित भालवाले, निज मुखकान्ति से विकसित-कमल को पराजित करनेवाले, और दीर्घ निविड़ अलकावलियोंवाले श्रीगौराङ्गदेव का भजन करो ॥ ६२ ॥

जय शचीजठराब्धिकलानिधे ! जय मुकुन्द ! नवीनरसांबुधे ! ।
जय जय प्रणयेन दयानिधे ! जय हरे ! जय केशव ! माधव ! ॥६३॥

हे शची-जठराब्धि कलानिधे !(चन्द्र)आपकी जय हो । हे नवीनरस-सागर ! भगवन् ! मुकुन्द ! आपकी जय हो । हे दयानिधे ! केशव ! माधव ! प्रेमपूर्वक आपकी सदैव जय-जयकार हो ॥ ६३ ॥

भजनतोदितसर्वगुणालयं, भज नतोदितसर्वगुणालयम् ।
स्मर सुवर्णमहो दयया चितं, स्मर सुवर्णमहोदययाचितम् ॥६४॥

जिनके भजन से सर्वगुणा माया सर्वथा नष्ट हो जाती हैं, और रसज्ञ भक्तजन जिन अप्राकृत गुणों का वर्णन करते हैं, उनके जो निवासस्थान हैं ऐसे प्रभु का भजन करो । और जो अहैतुकी दयायुक्त हैं, विषयीजन जिस प्रकार सुवर्ण के द्वारा वैभव की याचना करते हैं भक्तजन उसी प्रकार जिनके दर्शन की याचना करते हैं, एवं जो स्वतः कोटिकन्दर्प–लावण्ययुक्त हैं, अरे भाइयो ! उन प्रभु का प्रतिदिन स्मरण करो ।। ६४ ॥

इतःश्लोकद्वये शालिनी ।

प्रेमांभोभिः स्नापितस्निग्धगण्डः मन्दाकिन्या रोधसि स्वर्णवर्णः ।
नित्यानन्दस्कन्धविन्यस्तहस्तः, कोऽयं मातः संभ्रमाद् बंभ्रमीति ॥६५॥

प्रश्न–अरी माता ! प्रेमाश्रुजल से जिसके स्निग्ध कपोल स्नान किये हुए हैं, श्रीनित्यानन्दजी के कन्धेपर जिसका हस्तकमल विन्यस्त है, स्वर्णसमान गौरवर्णवाला यह कौन महापुरुष सम्भ्रमपूर्वक श्रीगंगाजी के तीरपर बारम्बार भ्रमण कर रहा है ? ॥ ६५ ॥

आस्ते कोऽपि श्रीनवद्वीपमध्ये, भाग्यांभोधिः श्रीजगन्नाथमिश्रः ।
जातस्तस्माद् गौरचन्द्राभिधेयो, नित्यं लोकैर्यस्तुतः सोऽयमेव ॥६६॥

उत्तर-श्रीनवद्वीपधाम में कोई भाग्यसागर श्रीजगन्नाथ मिश्र निवास करते हैं, उन्हीं से इस गौरचन्द्र नामक महापुरूष की उत्पत्ति हुई है। रसज्ञ-लोग जिसकी स्तुति करते रहते हैं, यह, वही महानुभाव हैं ॥ ६६ ॥

इत:श्लोकचतुष्के रथोद्धता।

चारुचंचलविलोचनांचल:, प्रेमपूरपरिपूरिताननः ।
कुण्डलोल्लसितगण्डमण्डलः, कोऽपि भाति भुवि गौरचन्द्रमाः ॥६७॥

जिसके नेत्र प्रान्त सुन्दर एवं चंचल हैं, जिसका मुखमण्डल प्रेमाश्रुओं से परिपूरित हैं, मणिमय कुण्डलों से जिसका गण्डस्थल (कपोलमण्डल) सुशोभित है, ऐसा कोई अद्भुत गौरचन्द्रमा भूतलपर सुशोभित है ॥ ६७ ॥

कुष्ठदूषितसमस्तविग्रहः, कोटिकीटदलितोऽपि मानुषः ।
प्राप्तदिव्यवपुरीक्षणात्तव, सादरं विशति नन्दनं वनम् ॥६८॥

जिसका समस्त शरीर कुष्ठ से दूषित हो रहा है, करोड़ों कीड़े जिसको सता रहे हैं, ऐसा पुरुष भी आपके दर्शनमात्र से दिव्य शरीर पाकर सादर न दनवन में प्रवेश करता है तो प्रभो ! आपकी उस अहैतुकी दयालुता का कौन वर्णन कर सकता है ? ॥६८ ॥

गौरचन्द्रकरुणामहानदी, यावदेव भुवमाययौ सखे ! ।
तावदेव सुरवर्त्म संकुलं वोक्ष्यते दिवि विमानवाहकैः ॥६९॥

हे सखे ! इस भूतलपर जब से श्रीगौरचन्द्र की करुणामयी महानदी पधारी है, तभी से स्वर्ग में विमान ले जानेवालों के कारण आकाश अनवकाश-सा दिखाई देता है। ६९ ॥

केनचिन्नवरसस्पृशा दृशा, सादरं विकचसारसोपमा ।
पूर्वजन्मसुकृतेन वीक्ष्यते, गौरचन्द्रचरणांचलप्रभा ॥७०॥

पूर्वजन्म में जिसने सुकृत किये हैं, प्रेमलक्षणा-भक्तिरस का स्पर्श करनेवाले नेत्रों से कोई भाग्यवान् पुरुष ही सारमपक्षि के पक्ष के समान शुभ्रवर्णवाली श्रीगौरचन्द्र की चरणांचल प्रभा का दर्शन करता हैं ॥ ७० ॥

इन्द्रवज्रा।

दृष्टं न यैर्गौरपदारविन्दं, स्पृष्टं न तत्प्रेमसमस्तसारम् ।
हृष्टं मनो नैव च तत्कथायां, हा किं कृतं तैर्भुवि भाररूपैः ॥७१॥

जिन्होंने गौरपदारविन्द का दर्शन नहीं किया, एवं उनके द्वारा प्रचारित पुरुषार्थ चतुष्टय साररूप प्रेम का स्पर्श नहीं किया और गौराङ्गदेव

की कथा में जिनका मन हर्षित नहीं हुआ तो बड़े खेद की बात है कि, भूभारस्वरूप उन्होंने भूपर आकर क्या किया ? ।। ७१ ।।

इत:श्लोकचतुष्के उपजति: ।

संसारसिन्धौ पतितं न पुत्रा, न बान्धवास्तारयितं समर्थाः ।
दत्वा ततः स्वीयकरावलंबं, त्वमेव संतारय दीनानथ ! ।।७२।।

संसारसागर में पड़े हुए जीव को पुत्र, पौत्र, बान्धव भी तारने में समर्थ नहीं हैं. अतः हे दीननाथ ! आपही स्वीयकरावलम्ब देकर कृपया पार कर दीजिये ।। ७२ ।।

संसारसन्तापितचित्तपान्थ !, यथाकथंचित् शरणं गतोऽसि ।
श्रीगौरपादांबुरुहं ततोऽपि, चेद् गन्तुमिच्छास्ति महाननर्थः ।।७३।।

हे संसार के त्रिविध-तापसन्तप्त मेरे चित्तरूप पथिक ! किसी अनिर्वचनीय भाग्योदय से श्रीगौरपादारविन्द की शरण जैसे-तैसे तुम को मिली है, वहाँ से भी यदि अन्यत्र जाने की इच्छा है तो, महान् अनर्थ हो जायगा ।। ७३ ।।

धन्यं नवद्वीपपुरं त्रिलोके, मन्दाकिनीमन्दतरंगरंगम् ।
यत्रावतीर्णो नवहेमगौरो, हरिर्हि भक्तिं प्रकटीचकार ।।७४।।

मन्दाकिनी की मन्दतर तरङ्गों से जिसकी विशिष्ट शोभा है ऐसा नवद्वीपधाम त्रिलोकी में धन्य है, कारण कि जहाँपर नवहेमगौरवपु श्रीहरि ने प्रगट होकर प्रेमलक्षणा-भक्ति का खुला प्रचार किया है ।। ७४ ।।

रसेन तुंगं मदमत्तभृगं, प्रमोदसंगं जुषतामनंगम् ।
लोलत्कुरंगं तनुतापभंगं, सुधातरंगं भज गौररंगम् ।।७५।।

हे प्रिय भक्तो ! आप सब उस गोरभक्ति रङ्ग का सेवन करो, जो रसविशिष्ट है, भ्रमर के समान मदमत्त है, विषयीजनों को भी जो अच्छा लगता, उसके सेवन से कस्तूरीमृगकी-सी विचित्र दशा हो जाती है, त्रिविध ताप नष्ट हो जाते हैं, अमृतमय तरंगों का लाभ होता हैं ।। ७५ ।।

इत:श्लोकद्वये स्रग्विणी ।

चालयन् योगिनां मानसं योगतो, लोलयँल्लीलया ब्रह्ममग्नं मनः ।
राजते या सदा प्रेमपूरोदरे, साऽवतु स्रग्विणी गौरमूर्तिर्हरेः ।।७६।।

योगियों के मन को जो योग से हटाती हुई और ब्रह्म ज्ञानियों के ब्रह्ममग्न मन को भी अपनी लीला से चंचल करती हुई सदैव प्रेमसमूह में विराजमान रहती हैं, वह मालाधारिणी श्रीगौरहरि की मूर्ति हमारी रक्षा करे ।। ७६ ।।

शाक्तवादैर्महादुर्मदैर्मर्दिता, प्रोल्ललास क्षितौ भक्तिवल्ली यतः ।
मालयालंकृतश्चारुवक्षस्थले, क्रान्तचित्तः सदा स्यात्स गौरो हरिः ।।७७।।

अत्यन्त दुर्दम्य शाक्तों के शुष्क वाद-विवादों से मर्दित-प्राया भी भक्तिलता पृथ्वी में पुनः जिनके द्वारा प्रोल्लासित हुई, और जो सुन्दर वक्षः-स्थलपर विराजमान माला से अलंकृत हैं वे ही श्रीगौरहरि, हमारे चित्त में सदा निवास करते रहें ।।७७ ।।

सुन्दरी ।

चरणे तव षट्पदावली, भ्रमतो गुंजति पंकजावलेः ।
अभितो वदनं शशिभ्रमाद्, भ्रमते चारुचकोरमण्डली ।।७८।।

हे प्रभो ! यह भ्रमरपंक्ति कमलपंक्ति के भ्रमसे आपकी पद पंक्तियों-पर गुंजार करती रहती है, और यह चकोरमण्डली भी चन्द्रमा के भ्रम से आपके मुखचन्द्र के चारों ओर भ्रमण करती रहती हैं ।। ७८ ।।

इतःश्लोकद्वये आर्या ।

चंचललोचनयुग्मं, वदनं न हि हेमगौरवर्णस्य ।
किन्तु स्फीतसरोवर-, मुल्लसते मीनयुगलेन ।।७९।।

अरे भाई ! हेम-गौर सुन्दर प्रभु का चंचल लोचनयुगल विशिष्ट यह श्रीमुख नहीं है, अपितु, दो मीनों के द्वारा स्वच्छ सरोवर सुशोभित हो रहा है ।।७९ ।।

विलसति गौरो नृत्ये, भक्तगणैर्मत्तमानसैः साकम् ।
भावैर्युक्तः प्रेमा, सात्त्विकसंचारिभिः किमयम् ।।८०।।

प्रेमरसमत्त चित्तवाले भक्तों सहित श्रीगौरप्रभु नृत्य में सुशोभित हैं, मानों ऐसा प्रतीत होता है सात्त्विक संचारीभावों से युक्त मूर्तिमान् प्रेम ही है क्या ? ।। ८० ।।

वियोगिनी ।

हरिणीगणहारिलोचनो, मदमत्तद्विपचारुविक्रमः ।
हरिचन्दनचर्चितः पुरो भुवि गौरांगहरिर्विलोक्यताम् ।।८१।।

हरिणीगण-हारीलोचनवाले, मदमत्तगजेन्द्र के समान चारु गति-वाले, हरिचन्दन-चर्चित कलेवर श्रीगौराङ्गहरि के दर्शन सामने ही भूतल-पर कर लो ।। ८१ ।।

स्वागता ।

मोहमत्तगजमर्दनसिंह, पापतापतिमिरक्षयसूर्यः ।
भक्तलोचनचकोरशशांकः, कोऽपि मे मनसि तिष्ठतु गौरः ॥८२॥

मोहरूपी मदमत्त हाथी का मर्दन करने के लिये जो सिंह स्वरूप हैं, एवं सकल पाप त्रिविध-तापरूप तिमिर को नष्ट करने लिये के जो सूर्य-रूप हैं, और जो भक्तों के लोचनरूप चकोरों के लिये सुखदायी चन्द्रतुल्य हैं, एवं गुणविशिष्ट कोई गौराङ्गदेव, मेरे मनमन्दिर में सदैव विराजे रहें ॥८२॥

दोधकम् ।

कांचनकेतकबन्धुरवर्णं, रत्नविनिर्मितकुण्डलकर्णम् ।
चिन्तय चित्त मनोमतिचौरं, जन्मनि जन्मनि जन्मनि गौरम् ॥८३॥

अरे ! चित्त ! तू जन्म-जन्मान्तर में ऐसे गौर मनोमणि-चौर का चिन्तन करता रहे, जिसकी कि अंगकान्ति कांचन केतकी से भी सुन्दर हैं, और जिसके दोनों कानों में रत्नजटित कुण्डल विद्यमान हैं ॥८३॥

मत्ता ।

प्रेमांभोधेस्तरलतरंगैः, सांसारं या दहति च तापम् ।
चैतन्यस्यावसतु सदा मे, चित्ते मूर्तिर्हरिरसमत्ता ॥८४॥

प्रेमरूपी समुद्र की तरल तरङ्गों से जो सांसारिक ताप को नष्ट कर देती है, और जो श्रीहरि लीलारस से मत्त रहती हैं, एवं गुणविशिष्टा श्रीचैतन्यदेव की मनमोहिनी मूर्ति मेरी चित्त रूप भित्तीपर सदैव चित्रित रहे ॥८४॥

पज्झटिका ।

विलसति गौरहरेर्यदि करुणा, मशका इव विधिशंकरवरुणाः ।
ग ररसे यदि मज्जति चेतः, शुक्तिसमा किल मुक्तिस्तस्य ॥८५॥

जिस भाग्यशाली जीवपर यदि श्रीगौरहरि की करुणा का विलास है तो, उसकी दृष्टि में विधि-शंकर-वरुणादिदेव, मशक के समान प्रतीत होते हैं, और जिसका चित्त गौररस में यदि निमग्न होता है तो, उसके लिये मुक्ति भी शुक्ति (सीपी) के समान जान पड़ती है ॥८५॥

मुरला ।

मधुरस्मितचारुकपोले, कटिचुम्बितनीलनिचोले ।
रसकेलिमनोमणिचौरे, रतिरस्तु सदा मम गौरे ॥८६॥

मधुर मन्दमुस्क्यान से जिनके कपोल सुशोभित हैं, कटितटपर नीलाम्बर शोभा पा रहा है, और जो अपनी रसमयी लीलाओं से रसज्ञ-भक्तों के मनोमणि को चुरा लेते हैं ऐसे गौराङ्गदेव में, हमारी सदैव रति बनी रहे ।।८६।।

तूणकम्

त्वां हसन्ति बान्धवास्तदा हसन्तु निर्भरं
मत्तमामनन्ति चेत्तदा वदन्तु का क्षतिः ।
मित्र ! वांछसि प्रियं निजं परत्र तच्छृणु
हेमगौरपादपद्ममाश्रयं सदा कुरु ।।८७।।

अरे भाई ! बान्धवगण यदि तेरी हँसी करते हैं तो यथेष्ट करने दे, और यदि तुझको मतवाला कहते हैं तो कहने दे, तेरी इसमें क्या हानि है ?

मित्र वर्य ! यदि आप अपना परलोकीय हित चाहते हो तो सुनो ! सुवर्ण गौरप्रभु के पादपद्मों का सदैव के लिये आश्रय ग्रहण कर लो ।।८७।।

द्विपथा ।

गौरचन्द्रचरणे रतिर्विलसति विशदा यस्य ।
प्रेमपूरपरिपूरितं नित्यं हृदयं तस्य ।।८८।।

श्रीगौरांगचन्द्र के चरणों में जिसकी विशुद्ध प्रीति है, उसका हृदय-सरोवर सदैव प्रेमरस प्रवाह से परिपूरित रहता है ।।८८।।

भ्रमरविलसिता ।

मल्लीवल्ली भ्रमरविलसिता, फुल्ला गेहं सुरभयति यथा ।
तद्वच्चित्तं सुखयतु सततं, भक्तिर्गौरस्मरणरसयुता ।।८९।।

भ्रमर, जिसपर विलास कर रहे हों, ऐसी खिली हुई मल्लिका लता (बेला) जिस प्रकार घर को सुगन्धित कर देती है, उसी प्रकार श्रीगौरचन्द्र स्मरण-रसयुता भक्ति, निरन्तर मेरे चित्त को सुखित करती रहे ।।८९।।

लीलाखेलम् ।

लीलांगीकृतरूपश्चैतन्यो रसभूपः
ज्ञात्वा पापरतं मां कर्ता नैव कृपां चेत्
हाहा त्यक्तसमस्तः पापे कर्मणि शस्तः
संसारे पदवीं कां यास्येऽहं गतशंकाम् ।।९०।।

भक्तविनोदार्थ श्रीविग्रहधारी, रसराज श्रीचैतन्यदेव, मुझको पापरत जानकर, यदि कृपा नहीं करेगें तो, हाय-हाय ! सबके द्वारा त्यागा हुआ पापकर्म में प्रसिद्ध, मैं, संसार में निःशंक किस दुःखमयी पदवी को प्राप्त करूँगा ? ॥ ९० ॥

लोला ।

योगाभ्यासकृतो ये खिन्नाः स्वान्तनिरोधात्
कर्मिष्ठा अपि दृष्टा नानोपायसकृष्टाः ।
लोला ये विषयेषु क्लिश्यन्ते किल तेऽपि
तस्मात्त्वं भज गौरं त्यक्त्वा सर्वमुपायम् ॥९१॥

अरे भाई ! जो योगाभ्यास में लगे हैं, वे तो मनीराम के वश में न होने के कारण दुःखित रहते हैं, एवं कर्मकाण्डी भी अनेकों उपायों में खिंचते देखे जाते हैं, और जो विषयों में तृष्णा रखते हैं, वे भी क्लेशयुक्त रहते हैं, अतः आपतो सब उपायों को त्यागकर, श्रीगौराङ्गदेव का भजन करो ॥९१॥

चण्डी ।

जयति जगति तव माधव! लीला, निजजनदुरितविदारणशीला ।
विमुख-दनुजकुल-नाशनचण्डी, सदयहृदयजनमानसहंसी ॥९२॥

हे माधव ! आपकी लीला जगत् में सर्वोपरि विराजमान है, कारण कि निजजनों के दुरित विदारण करना ही उसका स्वभाव है, एवं विमुख दैत्यकुल का नाश करने के लिये चंडी के समान हैं, और दयायुक्त हृदयवाले जनों की तो मानसहँसी है ॥ ९२ ॥

मालती ।

अलिरिव पुष्पितमालतीलतां, हिमकिरणं च चकोरमण्डली ।
घनमिव चातकसंहतिर्यथा, तवपदमिच्छतु मामकं मनः ॥९३॥

हे प्रभो ! पुष्पित मालतीलता को जिस प्रकार भ्रमरगण चाहते हैं, और चन्द्रमा को चकोरमण्डली मेघों को चाकतमण्डली जिस प्रकार चाहती रहती हैं, उसी प्रकार मेरा मन, आपके पदकमल को चाहता रहे, अन्यत्र न जाय ऐसी कृपा करो, दयालो ! ॥ ९३ ॥

रुचिरा ।

नरातुरामवतरति स्म माधवो, धरां यथा सुखयितुमद्भुतैर्गुणैः ।
तथैव किं प्रियसख ! भक्तिमुद्धरन्, शचीसुतो विमुखजनेन मर्दिताम् ॥९४॥

हे प्रिय सखे ! माधव भगवान् जिस प्रकार अपने अद्भुत गुणों से आतुर जनयुक्त धरा को सुखित करने के लिये अवतार लेते हैं, उसी प्रकार विमुखजन-मर्दित भक्ति का उद्धार करने के लिये ही, शचीनन्दन अवतार लेते हैं ।। ९४ ।।

जलोद्धतगति ।

नमामि करिणीमनोज्ञगमनं, समस्त-दुरितप्रमादशमनम् ।
शचीप्रियसुतं प्रसन्नहसितं, शशांकधवलं प्रमोदचपलम् ।।९५।।

करिणी के समान मनोहर चालवाले, समस्त दुरित प्रमाद नष्ट करनेवाले, प्रसन्न हास्यवाले प्रमोद-चपल, शशांक-धवल श्रीशचीदेवी के दुलारे को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं ।। ९५ ।।

त्वरितगतिः ।

त्वरितगती रतिरभसाद्, रचित-नतिर्हरिचरणे ।
अवतु सदा प्रणयमुदा, भजनपतिर्मम स गतिः ।।९६।।

प्रेम के वेग में जो शीघ्र गति धारण कर लेते हैं, कभी-कभी श्रीहरि चरणों में अनेक प्रणाम करते रहते हैं, वे ही प्रभु, मेरी सदा प्रेमपूर्वक रक्षा करें, और वे ही, भजनरक्षक मेरी गति हैं ।। ९६ ।।

हंसी ।

क्रीडां कुर्यात् श्रीचैतन्यप्रणयसरसि मम मतिरिव हंसी
अन्यद्वादं त्यक्त्वा वाणी रसयतु तदमलगुणगणगाथाम् ।
संसारेऽस्मिन्नान्या वार्ताः श्रवणयुगलमपि मम कलयेत्तु
प्रेमोन्मत्तः सोऽयं गौरो नटतु मनसि मम सह निजभक्तैः ।।९७।

मेरी मति, श्रीचैतन्य-प्रेमसरोवर में हँसी के समान सदैव क्रीड़ा करती रहे; और मेरी वाणी, अन्य वार्ताओं को त्यागकर, उनकी अमल गुणगाथा का ही गायन करती रहे; और मेरे कर्णयुगल भी, इस संसार में अन्य वार्तों को न सुनें, एवं प्रमोन्मत्त वही गौराङ्ग निज भक्तोंसहित मेरे मनमन्दिर में नृत्य करते रहैं ।। ९७ ।।

मदिरा ।

माधवभक्तमनः-सरसांबुजसंहतिजागरणप्रथितः
तर्कविदूषितलोचनधूकितदुर्जनघूकनिराशकरः ।

स्वीयपदाम्बुजसेवकमानसपापतमिस्रविनाशकरो
राजति गौरहरिर्भुवने रमणीयरुचिः प्रकटस्तरणिः ॥९८॥

भगवद्भक्तों के सरस मानसरूप-कमलों को विकसित करने के लिये जो प्रसिद्ध है, एवं कुतर्क-दूषित नेत्रवालोंको मूक बना देता है और दुर्जनरूप उलूकों को निराश कर देता है, और निज-पदाम्बुज सेवकों के मानसिक पापरूप अंधकार को नष्ट कर देता है, एवं जिसकी प्रभा कमनीय है, ऐसा गौराङ्गसूर्य अपनी कीर्ति प्रभासे आज भी भुवन में देदीप्यमान है ॥ ९८ ॥

इतःश्लोकत्रये निरोष्ठसोरठा ।

भ्रमारंभेण रहितो नतरंगविधायकः ।
अजडात्मातिमधुरः अपूर्वोऽयं रसार्णवः ॥९९॥

हे सखे ! इस संसार में यह एक अपूर्व ही रससमुद्र है, जिसमें न भँवर पड़ते हैं, न तरंगों को उत्पन्न करता है, न जलरूप हैं; तथापि अत्यन्त मधुर हैं। इस विरोधाभास का परिहार इस प्रकार है—यह वह गौर, रस-समुद्र है,जिसमें भ्रम-प्रमदादि पूर्वक कोई कार्य नहीं होता है; अतः नमस्कार परायण जनों के लिये रसप्रद हैं, स्वयं चैतन्यस्वरूप हैं, प्रेमलक्षण-भक्तिरस से अति मधुर है ॥ ९९ ॥

मुक्ताविर्भावितगुणो, धीवरैरवगाहितः ।
नवद्वीपानन्ददायी, गौरोऽयं सागरायते ॥१००॥

मुक्त मुनियों के द्वारा जिनके गुण प्रकाशित किये जाते हैं, बुद्धिमान् जन जिनके रूप-गुण-लीला-धाम आदि का अनुसन्धान करते रहते हैं, नव-द्वीपधामस्थ जनों को जो आनन्दप्रद हैं, ऐसे गौराङ्गदेव, सागरका-सा आचरण कर रहे हैं। सागर पक्षे—मोतियों से ही सागर की प्रकट महिमा है। धीवर, रात-दिन उसमें गोता लगाते रहते हैं, नवद्वीपस्थ जनमात्र के लिये आनन्ददायी है ही ॥ १०० ॥

दयानिधिः किल येन, श्रीचैतन्यश्चिन्तितः ।
दत्तश्चरणस्तेन, कृष्णकेलिरससागरे ॥१०१॥

दयानिधि श्रीचैतन्यचन्द्र का जिसने एकबार भी चिन्तन कर लिया उसने तो, श्रीकृष्णक्रीड़ा रूप-रससागर में पदार्पण कर दिया ॥ १०१ ॥

सर्वतोभद्रः ।

वंदे दंभिभिदं देवं, संगताजिजितागसं ।
रंगासाररसागारं, मंगलाचच्छच्छलागमं ॥१०२॥

मैं, उस दयालुदेव की वन्दना करता हूं, जो पाखण्डियों के दल को भी सदुपदेश से छिन्न-भिन्न कर देता है, और जो संग्राम में भी भक्तों के अपराधों को जीत लेता है, और जो उत्सव की अधिकता है, जिसमें ऐसे रस का गृहरूप है और प्राचीन पुण्य से निर्मल अन्तकरणवाले जनों के समीप किसी बहाने से ही जिसका आगमन होता है ॥ १०२ ॥

षोडषदलकमलबन्धोऽयम् ।

नीरजारण्यरम्योरस्सारभारहरस्मर !
भर गौर ! दरस्मेर ! हीरहार ! परज्वर ! ॥१०३॥

हे कमलवन के मध्यस्थ मकरन्द की शोभा को अपने सौन्दर्य से तिरस्कृत करनेवाले गौरांगदेव ! हे स्व-शत्रुजनों ज्वरवत् तापदायक ! हे रत्नों के हार पहननेवाले ! हे ईषद्हास्ययुक्त भगवन् ! अपने सौंदर्यामृत से मेरा पोषण कीजिये ॥१०३॥

गोमूत्रिकाबन्धोऽयम् ।

गौरं भजत रे मूढत्राणदं चिरसंभृताम् ।
दूरं त्यजत रे गूढवासनां चित्तसंगताम् ॥१०४॥

अरे भाइयो ! मूढ़जनों को त्राण (रक्षा) देनेवाले गौरांगदेव का भजन करो, और अनादिकाल से चित्त में सञ्चित वासना को दूर से ही त्याग दो, बस इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥ १०४ ॥

अथ कादाचित्की-कथा

श्रीराधिका-सहजभाव-निमग्नचित्तः
कूर्माङ्गवद् हृदि निगूहित-सर्वगात्रः ।
रोमाञ्चरञ्जितसमस्ततनुः कदापि
गौरो जनैः कनकपिण्ड इव व्यलोकि ॥१०५॥

किसी समय की कथा

एक दिन श्रीजगन्नाथजी में सब भक्तों ने श्रीगौरांगदेव की ऐसी दशा का दर्शन किया—जिनका चित्त श्रीराधिका के भाव में सहज निमग्न है एवं जिनके श्रीअंग कछुए के समान निज अंग में ही छिप गये हैं और प्रेमाधिक्य से सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित है कनक पिण्ड के समान एक जगह निश्चल भाव से स्थित हैं ॥१०५॥

विलोक्य तां गौरहरेरवस्थां, संकीर्तनं भक्तगणश्चकार।
तेन प्रबुद्धाऽखिलचित्तवृत्ति-, र्बाह्यां दशां गौरहरिः प्रपेदे ।।१०६।।

भक्तों ने प्रभु की ऐसी दशा देखकर नाम संकीर्तन करना आरम्भ कर दिया, संकीर्तन सुख से चित्तवृत्ति जाग उठी और गौरहरि को बाह्य दशा का लाभ हुआ ।। १०६ ।।

तं वीक्षितुं सेवितुमप्यनल्प-, श्रद्धाभरो गौरहरेः स्वरूपम् ।
कश्चिद् द्विजो गौरपदानुरागी, 'गोपालभट्टः' स्पृहयाञ्चकार ।।१०७।।

गौरपदानुरागी विप्रवर श्रद्धालु श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी के हृदय में श्रीगौरहरि के उस रूप के देखने की और सेवा करने की स्पृहा (इच्छा) उत्पन्न हो गई ।।१०७।।

ज्ञात्वा स्वभक्तस्य मनोरथं तं, स्वप्नान्तरे तं निजगाद गौरः ।
त्वं गण्डकीं नाम नदीं प्रयाहि, शिलास्वरूपेण वसामि तस्याम् ।।१०८।।

अपने अन्तरंग भक्त के उस मनोरथ को जानकर श्रीगौरहरि ने स्वप्न में गोपालभट्टजी से कहा कि—तुम गंडकी नदी पर चले जाओ मैं उस में शालग्रामरूप से निवास करता हूँ ।। १०८।।

बह्वयः शिला यद्यपि तत्र सन्ति, परन्तु सैका प्रथमं त्वदीये ।
हस्ते गमिष्यत्यथ गूढचिह्नां, तामानय त्वं यदि साभिलाषः ।।१०९।।

उस गंडकी नदी में यद्यपि बहुत-सी शालग्राम की मूर्तियाँ हैं तथापि पहले ही तुम्हारे हाथ में जो मूर्ति आ जाय गूढ़चिन्हवाली उसी मूर्ति की तुम दर्शनाभिलाष पूर्वक सेवा करो ।। १०९ ।।

ततः प्रबुद्धः स विरक्तमौलि-, राज्ञां प्रभोर्मूर्ध्नि निधाय यत्नात् ।
तथैव चक्रे शयने यथैव, तमादिशच्चम्पक-चारुवर्णः ।।११०।।

तदनन्तर विरक्त शिरोमणि श्रीगोपालभट्टजी जागे और प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य मानकर वैसा ही किया जैसा कि—चम्पक चारुवर्ण श्रीगौरांगदेव ने स्वप्न में आदेश दिया था ।। ११० ।।

भावेन तेनाऽथ निषेवितायाः-, स्तस्याः सकाशाद् वपुराविरासीद् ।
श्रीराधिकाभाव-विभाविताङ्गं, तदेव 'राधारमणं, वदन्ति ।।१११।।

गंडकी नदी से प्राप्त उस शालग्राम शिला का प्रभु दर्शनाभिलाष पूर्वक जो सेवन करना आरम्भ किया तो भाववश प्रभु उसमें से ही प्रगट

हो गये, उन्हीं को भक्तजन श्रीराधिकाभाव से विभावित अंग वाले होने के कारण आज भी श्रीराधारमण नाम से पुकारते हैं ।। १११।।

गोपालभट्टो भुवि धन्यमान्यः, प्रेम्णा यदीयेन शिलां विदार्य ।
प्रादुर्बभूव त्रिजगत्सुखाय, श्रीराधिकाया रमणो मुकुन्दः ।।११२।।

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी इस भूतलपर धन्य एवं मान्य हैं कारण कि जिनके लोकोत्तर प्रेम से प्रभु शिला को विदीर्ण करके त्रिजगत् को सुख देने के लिये सर्वमुक्ति प्रदाता भी श्रीराधारमणरूपसे प्रगट हो गये ।। ११२ ।।

गोविन्दवक्त्रमिव यस्य मुखेन्दुबिम्बं
गोपीपतेरिव कपाटसमं च वक्षः ।
लीलालसा गतिरिव स्मरमोहनस्य
श्रीराधिकारमण एष विभाति भूमौ ।।११३।।

उन श्रीराधारमणलालजी की मूर्ति का मुखारविन्द तो श्रीगोविन्ददेवजी के समान है श्रीगोपीनाथजी के समान विशाल वक्षःस्थल है और श्रीमदनमोहनजी के समान लीलालस गति है एवं गुणविशिष्ट शिष्टजन पूजित पदारविन्द अरविन्दनयन भगवान् भक्तों के वशीभूत होकर आज भी कलिजन्य भक्तजन मन विनोदार्थ भूतल पर श्रीवृन्दावन में श्रीराधारमण रूप में विराजमान हैं अतः भावुक भक्तों को उनके दर्शन अवश्य करने चाहियें ।। ११३ ।।

(श्रीराधारमणजी का सम्पूर्ण इतिहास जानने की इच्छावालों को वृन्दावनवास्तव्य शास्त्री श्रीवनमालिदासजी कृत – "श्रीराधारमण शतक" अवश्य पढ़ना चाहिये)

चित्रलेखानामकं छन्दः

माधुर्यादि-प्रथितगुणगणं चित्रचातुर्य-युक्तं
दोषाऽस्पष्टं मुदितकविकुलं वक्त्रशोभा-प्रसन्नम् ।
सालंकारं ललितपदयुतं चारुवर्णं मदीयं
काव्यं गौरप्रकटवपुरिव स्यात् सदा भक्तसेव्यम् ।।११४।।

और माधुर्यादि प्रसिद्ध काव्य-गत गुण जिसमें हैं, चित्रकाव्यों के चातुर्य से जो युक्त हैं, काव्यगत दोष रहित है, कविजन जिसको देखकर पढ़कर प्रसन्न हो जाते हैं एवं जो प्रारम्भ की शोभा से प्रसन्न प्रभुमुख

की शोभा के समान है अनेकों अलंकारों से सुसज्जित है ललितपद विन्यास युक्त है और सुन्दर वर्णविशिष्ट–मेरा यह "श्रीगौरप्रेमोल्लास" नामक काव्य भी प्रकट-वपु श्रीगौराङ्गदेव के समान भावुक भक्तों द्वारा सदैव सेवनीय है ॥११४।

चैतन्यपादाम्बुजचञ्चरीक-, स्तदीयजाग्रत्-करुणावलम्बः ।
विचित्रचातुर्ययुतश्चकार, काव्यं कविर्नन्दकिशोर-नामा ॥११५॥

वसु-ग्रह–व्याकरणेन्दु-सम्मिते, संवत्सरे काव्यमिदं विनिर्मितम् ।
आषाढमासे बुधवासरान्विते, हरेर्दिने मेचकपक्ष-संयुते ॥११६॥

इति श्रीमदखिलमहीमण्डल–देदीप्यमानयशोगान–कविकुलनृपति–चक्रवर्ति–गीतगोविन्दकर्तृ-श्रीजयदेवगोस्वामि-वंशोद्भव-भागवतचन्द्र-श्रीनन्दकिशोर--चन्द्र-गोस्वामिप्रभुप्रणीतं श्रीगौरप्रेमोल्लासकाव्यं समाप्तम् ।

श्रीचैतन्यदेव की करुणा जिस पर जागरूकरूपेण विद्यमान हैं और उनकी करुणावलम्ब रूपबल से जो विचित्र चातुर्य युक्त है उन्हीं के चरणारविन्दों का जो भावुक भ्रमर हैं उसी—'श्रीनन्दकिशोर'–नामक कवि ने इस काव्य की रचना की है। विक्रम सम्वत् १८९८ में आषाढ़ मास में बुधवार युक्त कृष्णपक्ष की एकादशी के दिन श्रीवृन्दानधाम में इस "गौरप्रेमोल्लास"-काव्य की रचना हुई है ॥१६६॥

भाषाटीका निर्माण काल और निर्माता का परिचय :—

बाणेन्दुशून्यनयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्कनृपतेरपि भाद्रकृष्णे ।
वृन्दाटवीवसतिलब्धकवित्वशक्तिष्टीकामिमां रचितवान् वनमालिदासः ॥१॥

'प्रेमोल्लास–प्रकाशिका' नामक इस भाषाटीका की रचना वि० सं० २०१५ में भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में हुई है। इसकी रचना भी उन महाकवि श्रीवनमालिदासशास्त्रीजी महाराज के द्वारा हुई है कि, जो भारत सरकार द्वारा 'कालिदास'–पुरस्कार से पुरस्कृत हैं। और जिनको कविता करने की शक्ति का लाभ, श्रीवृन्दावन में निवास करने की अपूर्व शक्ति के द्वारा ही हुआ है ॥१॥

इति श्रीनिखिलशास्त्र–पारावार–पारदृश्व–सख्यावताराष्टोत्तर–शतस्वामिश्रीकृष्णानन्ददासजी – महाराजानां शिष्येण महाकविना श्री-वनमालिदासशास्त्रिणा विरचितया 'प्रेमोल्लास–प्रकाशिका'–नामिकया भाषाटीकया सहितं 'श्रीगौरेप्रेमोल्लासकाव्यं' सम्पूर्णम् ।

।। श्रीरामकृष्णौ विजयेतेतमाम् ।।

मेरे द्वारा वि० सं० १९९९ से लेकर वि० सं० २०३३ तक विरचित ३५ वर्ष की फुटकर कवितायें तो, "श्रीवनमालिप्रार्थना-शतक" के पीछे छपी हैं, और उसके बाद की एवं बाकी कवितायें यहां पर प्रकाशित की जा रही हैं।

निजगुरुपरम्परा यथा—

निर्माणकाल : वि० सं० २०३४

श्रीकृष्णचन्द्र-प्रारम्भां श्रीमध्वाचार्य-मध्यमाम् ।
अद्वैत - कृष्णचैतन्य-नित्यानन्द - विशेषिताम् ।।
अस्मदाचार्य-पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

विना भगवत्कृपया श्रीवृन्दावनवासो न भवतीति कथनम् ।

निर्माणकाल : वि० सं० २००७

विना राधाकृष्ण-प्रवरकृपया कस्यचिदपि
न वासः श्रीवृन्दावनभुवि कदाचित् प्रभवति ।
इति ज्ञात्वा श्रीमानपि तदनुकम्पाऽधिगतये
पुराऽऽद्रस्वान्तेन प्रतिदिनमजस्रं प्रयतताम् ।।१।।
इति दैन्यभराऽऽकुलात्मना, बहु याच्ञा हि यदा करिष्यते ।
कृपया हरिधाम-देवयो-, र्हरिधामाऽपि विलोकयिष्यते ।।२।।

श्रीभागवतीकथायां शुभसम्मति :—

निर्माणकाल : वि० सं० २००७

जयति श्रीप्रभुदत्तः, प्रभुदत्तो ब्रह्मचारी सः ।
निखिल-श्रुतिरसवेत्ता, वेत्ता यो भक्तितत्त्वस्य ।।१।।
श्रीमद्भागवताख्यं, प्रथमं कृतवान् पुराणतिलकं यः ।
पुनरपि प्रादुरभूदिव, स प्रभुः प्रभुदत्तरूपेण ।।२।।
प्रथमं बुधजनगम्यं, मधुवर्षि धर्षितपरं यत्काव्यम् ।
अहह ! बुधाऽबुधरसदं, सरसं सरसमाधुनिकम् ।।३।।

श्रीमद्भागवती-कथाऽतिसरसा ग्राह्या सदा सज्जनै-
र्देवानामपि दुर्लभाऽतिसुलभा या भारते भूतले ।
भाषा सौख्यविधायिनी प्रतिपदं यस्याः समेषां नृणां,
भक्ति-ज्ञान-विराग-तत्त्वरसदां श्रूयान्न कस्तां कृती ।।४।।
सहृदयेन जनेन मनागपि, सुपठिता यदि भागवती-कथा ।
नहि कदापि स हातुमधीश्वरो, भवतु वा प्रवया युवकोर्भकः ।।५।।
इति मयाप्यनुभूय विलिख्यते, कृतिरियं न मुधैव प्रशस्यते ।
इति विचार्य विचारचणा जना, अपि पठन्तु नु भागवतीं कथाम् ।।६।।
श्रीप्रभु-रचितकथायां, सर्वलोक-सम्मतायां दत्त्वैव ।
निज-सम्मतिं हि कुरुते, सफलां वनमालिदासोऽपि ।।७।।

।। श्री सती माता की स्तुति ।।

निर्माणकाल : वि० सं० २०२९ श्रावण

अस्तुति सतीमाता की कीजै । हिय में गोविन्दी धर लीजै ।।
जिनकी माता रत्नकुमारी । दौलतराम पिता थे भारी ।।
गोपीराम प्रथम भाई थे । दूसर कुन्दनलाल सही थे ।।
गोपीराम के पंच पुत्रवर । वद्रीप्रसाद आदि सब शुभ कर ।।
केदारलाल व रामसुखकर । राधावल्लभ श्रीवंशीधर ।।
सती पतो हैं दिलसुखराम । पुत्र उन्हीं के आशाराम ।।
कलियुग में गोविन्दी देवी । सती भई हैं जिन जिन सेवी ।।
तिनके पूरण हों सब काम । हृदय राखिये दिलसुख राम ।।
सती शिरोमणि गोविन्दी जी । अस्तुति करों चरणवन्दी जी ।।
माता ध्यान हमारो कीजै । संकट सबरोई हर लीजै ।।
सती मातु खिरसौली वारी । हम पर कृपा कीजिये भारी ।।
श्रीवनमालिदास कवि गावैं । कहैं सुनैं ते सब फल पावैं ।।

अमृतजयन्ती महोत्सव :—

अक्षयतृतीया २०२९

पूज्यपादगुरुदेववराणां, वन्दनीयललिताचरणाम् ।
प्रेरणासितसुबन्धुवराभ्यां, सुप्रसाद-हरिशंलललिताभ्याम् ॥१॥

वेद-वाण-नव-चन्द्रमितेऽब्दे, ललितहार-राधारमणस्य ।
साध्वकारि शुभमूर्तिप्रतिष्ठा, यथा तयोः प्रथिता शुभनिष्ठा ॥२॥

नन्दाक्षि-शून्य-करसम्मितविक्रमाब्दे, वैशाखमासि शुभशुक्लवरे च पक्षे ।
पादोनवीत-शतसंख्यवर्षमेऽब्दे, संजायतेऽमृतजयंतिमहात्सवोऽयम् ॥३॥

गोस्वामिवर्यो गिरिधारिलालो, ह्यध्यक्षरूपेण विराजतेऽस्मिन् ।
तस्यैव सत्प्रेरणया महोऽयं, सुनिश्चितः संचलतीह सम्यक् ॥४॥

तदर्थं श्रीमन्तः सकलपरिवारेण सहिताः
समाहूयन्ते संप्रति विनयपूर्वं सहविधम् ।
मिलित्वा सत्रेऽस्मिन् कथनश्रवणादेरपि सुखैः
सहर्षं स्वात्मानं सफलयत यूयं प्रतिपदम् ॥५॥

रामनाथगोविन्दप्रसादः, सन्दीपोह्यरविन्दप्रसादः ।
श्रीराहुल-सिद्धार्थप्रसादः, आदित्यनाथ-मुकुन्दप्रसादः ॥६॥

श्रीविश्वनाथो भरतस्वरूपः, सुबोधचन्द्रः खलु राघवेन्द्रः ।
श्रीयुक्तराधारमणः सुराजा, श्री श्रीहरिश्चन्द्र उदारचेताः ॥७॥

श्रीरामोरघुवीरो, ज्योतिस्वरूपो माधवप्रसादः ।
श्रीयुतमहेशचन्द्रः, सर्वेऽमी स्वागताऽध्यक्षाः ॥८॥

ललितहरेः कुलजाताः सर्वेऽमीधन्यवादार्हाः ।
वितरतु शं वनमाली, सर्वेषामेव चैतेषाम् ॥९॥

प्रार्चतेतिश्रुति-वर्यनिदिष्टा, श्रीहरेर्भवति मूर्तिप्रतिष्ठा ।
पूजनं भवति सर्ववरिष्ठं, सम्मतं सकलशास्त्रगरिष्ठम् ॥१०॥

श्रीपीतभित्तौ जगदीशमार्गे, लक्ष्मीसुशीलाचरणैः सदाढ्ये ।
विराजतामाब्दमहो महोऽयं, श्रीयुक्तराधावरमन्दिरेस्मिन् ॥११॥

श्रीविरजानन्द-स्मारकभवनोद्घाटनम्

वि० सं० २०३१ माघ शुक्ल

सा जयति श्रीमथुरा, यस्यां पूर्वं चिदानन्दनम् ।
निखिल-श्रुति-प्रतिपाद्यं, ब्रह्मैवाविः समायातम् ॥१॥
स जयति विरजानन्दो, यस्यादेशाद् दयानन्दः ।
स्वे स्वे कर्मणि सुप्तं, मानव-मात्रं स्म चेतयते ॥२॥
विरजानन्दस्मारक-, भवनस्योद्घाटनं कर्तुम् ।
बी० डी० जत्तीसंज्ञो, भारतराष्ट्रोपपतिरागात् ॥३॥
उपराष्ट्रपतेर्वयमादरतः, शुभमागमनं नमनेन समम् ।
करवाम उदारमतेरभितो, ऽप्यवलोकनतो नयनं सफलम् ॥४॥
धन्याविमौ द्वावपि माननीयौ, सत्यप्रकाशश्च प्रकाशवीरः ।
अध्यक्षतायामथ नेतृतायां, ययोरिदं कार्यमभून्नितान्तम् ॥५॥
अत्रागता ये बहवोऽपि लोकाः, सर्वे वयं धन्यतमा अभूम ।
समागतानामिह देशपानां, यतो वयं स्वागतमाचरामः ॥६॥

निर्माणकाल ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी वि० सं० २०२९

साहित्यसंमेलन-गोष्ठिकायां, साहित्यकारः खलु सुप्रसिद्धः ।
सम्माननीयः सुकविः सुधीभि- र्विराजते सम्प्रति बालकृष्णः ॥१॥
श्रीआगराविश्वविद्यालयस्य कुलपतिः श्रीमान् ।
श्रीरावजीसुधीः सर्वैरस्माभिरभिनन्द्यते ॥२॥
श्रीबालकृष्णोद्भवभूमिकायां, श्रीबालकृष्णोऽपर एष भाति ।
ततः पुरातत्त्वविभाग एष, मणौ शुभः काञ्चनयोगतुल्यः ॥३॥
श्रीप्रभुदयालमीतल—, मभितः सर्वेऽभिनन्दामः ।
हृष्यति मथुराऽप्येनं, साहित्यवाचस्पतिं प्राप्य ॥४॥
व्रजोद्भवेनाऽप्यमुना व्रजस्य, सेवा कृता तत्त्वप्रकाशनेन ।
धन्यो व्रजोऽननेन व्रजेन चैष, तस्मादुभावप्यतिधन्यधन्यौ ॥५॥
श्रीजयकुमारमुद्गल - वरसानेलाल - चतुर्वेदी ।
स्वल्पाहारविधाया, जयतां संयोजकावेतौ ॥६॥

मानस-चतुःशताब्दी महोत्सवः

निर्माणकालः २०३०

व्रजजनपदीयमानस-चतुःशताब्दी महोत्सवे समितिः ।
वृन्दाविपिनविभागे, मानसगोष्ठीं समानयति ।।१।।
श्रीप्रभुदयालुकृपया, धीरेन्द्रमोहनस्य छायायाम् ।
श्रीयुतवृन्दाविपिने, मानसगोष्ठी समुल्लसति ।।२।।
स जयति तुलसीदासो, रामचरितमानसं येन निरमायि ।
यत्सकृदपि प्रविश्य, संसारे नहि जनो रमते ।।३।।
इन्दु-विभूषणनामा, अखण्डपाठैर्भृशं सुमानार्हः ।
यस्योद्यमवशवर्ती, मानसप्रचारः समुल्लसति ।।४।।
जयति-जनार्दनदत्तो, दत्तो नूनं जनार्दनेनैव ।
मानस-चतुःशताब्दी -, महसो योऽध्यक्षतां यातः ।।५।।
श्रीराजसूययज्ञे, जनार्दनो यथाऽग्रपूजायाम् ।
तद्वज्जनार्दनोऽयं, मुख्यो ह्यतिथिः समानमानार्हः ।।६।।

काश्मीरदेशभूपति-कर्णसिंहाभिनन्दनम्

निर्माणकाल : २०३१

काश्मीरदेशं खलु भौमस्वर्गं, वदन्ति सर्वेऽपि महानुभावाः ।
तत्राधिराजो बुधकर्णसिंहो, विराजते पर्यटकस्य मन्त्री ।।१।।
विद्वत्पूर्णः श्रीलकाश्मीरदेश-, स्तत्रत्योऽयं कर्णसिंहोऽपि राजा ।
सौशील्याद्यैः श्रीगुणैरभ्युपेतः, सम्मानार्हः सर्वलोकस्य भूमौ ।।२।।
लोकातीता श्रीहरेर्जन्मभूमिः, लोकातीतो भूपतिः कर्णसिंहः ।
लोकातीतं सद्म चैवातिथेयं, लोकातीतं तस्य सूद्घाटनं च ।।३।।
कृष्णादेवी-डालमीयाभिधाना, अन्ता राष्ट्रीयाऽतिथीनां च शाला ।
उद्घाटोऽस्या जायते मन्त्रिहस्तैः, सौख्येनाढचैर्जानुदघ्नं विशालैः ।।४।।
यो भारतस्योड्डयनस्य मन्त्रो, विख्यातिमान् पर्यटकस्य मन्त्री ।
उद्घाटनं तस्य कराम्बुजाभ्यां, सौख्यप्रदं स्यादतिथिव्रजस्य ।।५।।

जयदयालवतोऽपि हरेरिदं, भवति विष्णु शुभं शुभदं सदा ।
अतिथिगेहमुपेत्य जनः समः, सुखमुपेत्य सदा मुदितो भवेत् ।।६।।

मानसचतुः शताब्दी-, महसो योऽध्यक्षतां यातः ।
उद्घाटयति रामकिंकर-रामकथां-मानसोल्लासैः ।।७।।

श्रद्धाञ्जलिः

निर्माणकालः वि० सं० २०३३

सदा व्रजनिवासधी रसिकशेखराऽऽसक्तधीः
सदोज्ज्वलरसाक्तधीः सकल-शास्त्रपाराप्तधीः ।
जगद्रस-विरक्तधीः प्रभुरहस्य-संरक्तधीः
प्रियाशरणदासधी–र्जयति साधुसंसक्तधीः ।।१।।

गोवर्धने परिसमापित-लीलिकस्य
वृन्दावने प्रियतमार्पित-जीवकस्य ।
श्रीमत्प्रिया–शरणकस्य महोत्सवेऽस्मिन्
श्रद्धाञ्जलिं रचितवान् वनमालिदासः ।।२।।

श्रीलविशाखाशरणः, श्रीकुञ्जविहारिशरणश्च ।
श्रीलमाधुरीशरणः, सर्वेऽप्येते महात्मानः ।।३।।

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीप्रियाशरणान् महात्मनो विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।४।।

व्रजहोलिकायाः स्वारस्यम्

निर्माणकालः वि० सं० २०१३

पूर्वं सखीभिरतिनर्मसु होलिकायां,
क्रीड़ा कृता भगवता ननु पुष्पयष्टचा ।
तं भावमर्पयितुमेव व्रजेऽधुनापि,
क्रीड़ा विधीयत इव प्रणयात्सुयष्टचा ।।१।।

यथा विदूरत एव, वृन्दावन-वास-वासनानन्दः ।
नीयत आन्तरिको वै, बाह्योऽप्यधुना समालम्ब्यः ।।२।।

पं० श्रीराधावल्लभाऽभिनन्दनम्

निर्माणकालः वि सं० २०१३

श्रीराधाविरहानलाख्यकुमुदं प्राचीकशद् यः पुरा,
वाणीचन्द्रिकयाऽनिरुद्ध - रसभागूषाविलासं ततः ।
येनाऽकारि सरोजिनी हितपराऽलीनां सतां प्रस्फुटा,
राधावल्लभचन्द्रमाः स जयतात् साहित्यसिन्दूद्भवः ॥१॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीराधावल्लभान् विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥२॥

श्रीरूपगोस्वामिसुभक्तिभावकै-र्वृन्दावने स्वेन प्रकाशमीयुषे ।
वृन्दावनाज्जयपुरराजधान्यां, विराजमानाय नमो नमस्ते ॥१॥
पाटोत्सवे जयपुरेऽद्य प्रवर्तमाने, गोविन्ददेव-सदने सदनेक-पूर्णे ।
तस्यैव प्रीतिविषयं खलु लेखमेतं, वृन्दावने लिखितवान् वनमालिदासः ॥२॥

वरवध्वोराशीर्वादः

निर्माणकालः वि० सं० २०३०

ज्योतिः स्वरूपस्य तु ज्योतिरेष, श्रीकृष्णचन्द्रस्य प्रसाद एषः ।
मूर्तं हरिश्चन्द्रयशश्च राधा-, वरस्य मूर्तो वर एष जीयात् ॥१॥
ऊषां विलोक्यैव यथा जना मुदा, स्वं स्वं शुभं कर्म समारभन्ते ।
तथैव गोविन्दवरोषयाऽनया, चिरं शुभं कर्म समारभस्व ॥२॥
सीताराम - रामरघुवीरौ, टीकमचन्द्र - पद्मचन्द्रवीरौ ।
श्रीऊषागोविन्दवरस्य, कुरुतां कुशलं सपदि चिरस्य ॥३॥
प्रीतभित्तिरर्गलपुरमेत्य, छीतरमल इति फर्म समेत्य ।
सुष्ठु विभाति विभेव सुभानोः, श्रीहरि-कृपया भवतु विभा नो ॥४॥

विहारप्रान्तान्तर्गत-व्याघ्रसरस्थितचरित्रवने भगवतः श्रीवैकुण्ठ-नाथस्य दिव्यदेशप्रतिष्ठामहोत्सवावसरे श्रीवृन्दावनवास्तव्यैः, महाकवि–श्रीवनमालिदासशास्त्रिमहोदयैः

सादरं समर्पितो

वाक् पुष्पाञ्जलिः

वि० सं० २०३३ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी

गंगातटे व्याघ्रसरे हि विश्वा—, मित्रस्य यज्ञस्थल-ताटकावधे।
विराजमानाय च भक्तहृत्सु, वैकुण्ठनाथाय नमो नमस्ते ॥१॥

विश्वामित्रोऽपि यत्रैव रामायोपदिदेश ह।
पराऽवरे हि द्वे विद्ये क्षुत्पिपासा-निर्वर्तिके ॥२॥

प्रतिवादिभयंकरश्च यो, विनतानन्दनवर्धनः सदा।
हरिभक्तिप्रचारणे रतो, भुवि सर्वत्र सुखेन मानवे ॥३॥

अनेकशास्त्रार्थविधौ रतः सदा, अनेकपत्रादिप्रकाशने रतः।
अनेकमाहात्म्यगुणैरलंकृतः, अनन्त आचार्य उदैदनन्तकः ॥४॥

वैदुष्यं यस्य श्रुत्वा निवह उ विदुषां शिष्यतां सम्प्रयातः
सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदभरमयाद् भूरि चेतः समेषाम्।
यस्यैवाऽनुग्रहेण प्रकटमुपययौ मुम्बईदिव्यदेशः
सोऽनन्ताचार्यवर्यो जगति विजयते पूजिताचार्यवर्यः ॥५॥

येषां सत्कृतये निजैः परिकरै-र्वाईसरायोऽलगत्
येषां नामत ए प्रकाशमयते सन्देशभाक्पत्रिका।
येषां पुत्रवरो वरार्चितगुणः श्रीकृष्णमाचार्यकः
पुत्रो यस्य विभाति भक्तिरसिकः श्रीश्रीनिवासः सुधीः ॥६॥

यस्यैवाऽध्यक्षतायां प्रचलति मधुरा दिव्यदेशप्रतिष्ठा
शान्तो दान्तस्तितिक्षुः प्रभवति सरलो यो हि विद्वान् महाँश्च।
श्रीमद्रामानुजार्यैर्विरचितकृतिषु स्वष्टसंख्या मठेषु
काञ्चीपीठे हि मुख्ये मठपतिरभवद् दिव्यतेजा अनन्तः ॥७॥

रामाग्निशून्यकर-सम्मितविक्रमाब्दे,
पक्षे हि फाल्गुनसिते द्विदशाढ्यतिथ्याम् ।
वैकुण्ठनाथभगवद्विमलाप्रतिष्ठा,
जाता हि सा भवतु सर्व-सुमङ्गलाय ॥८॥

विश्वक्-सेनाचार्यवर्यो महात्मा, शिष्योऽनन्ताचार्यवर्यस्य मुख्यः ।
योगी त्यागी निष्पृही पारदृश्वा, शास्त्रस्तोमस्यापि शान्तः स जीयात् ॥९॥

निवसति गंगातीरे, चातुर्मास्यं च यः सदा कुरुते ।
वैष्णवमतप्रचारे, विपुलो यस्यास्ति सहयोगः ॥१०॥

यस्य निदेशं प्राप्य, श्रीवासुदेवः सोमानी ।
सादरमनुपमदेशं, चरित्रवने दिव्यदेशमधात् ॥११॥

मांगीदेवी-वासुदेवस्य भक्त्या, सप्ताहोऽयं सौम्यदेशे विभाति ।
वक्ता सौम्यो नारसिंहो हि विद्वान्, चेतो हर्ता श्रोतृवर्गस्य वाण्या ॥१२॥

सोमानीवंशरत्नं स जयति विदितः श्रील ओंकारमालो
यस्यौदर्येण रूप्यैर्द्विनियुतनिमितै - र्वासुदेवाऽऽह्वयेन ।
विश्वक्सेनाऽऽज्ञयाऽयं निजधनसुफलो दिव्यदेशो ह्यकारि
सोऽयं लोकद्वयेऽपि प्रतिपदमयतां कीर्तिमानन्ददात्रीम् ॥१३॥

येनाऽकारि गुरोर्निजस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदं
चक्रे 'सख्य-सुधाकरं' य उ महाकाव्यं 'हरिप्रेष्ठकम्' ।
टीकां यश्च लिलेख भाववलितां गोपालचम्पूद्वये
तेनाऽयं वनमालिदासकविना दत्तो हि पुष्पाञ्जलिः ॥१४॥

श्रीमत्सभापतिमुखान् विदुषः प्रणामै-, र्देवालयाय धनदानपि धन्यवादैः ।
वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्वशक्तिः, प्रेम्णाऽभिनन्दति भृशं वनमालिदासः ॥

श्रीधन्वन्तरिस्तोत्रम्

निर्माणकाल वि० सं० २०३४

यो भक्तवत्सलतया जगदुद्दिधीर्षु र्व्याधेर्विमोच्य सकलं विमलं चिकीर्षुः ।
ताताच्च दीर्घतमसोऽवततार लोके, धन्वन्तरिः स भगवान् मम शंतनोतु ॥१॥

नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति,
साम्ना विशोधयति सर्वंजगन्मनांसि ।
धाम्ना विराजयति सर्व-विलोचनानि,
धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु ॥२॥

यः कीर्तिरूप इति भागवते निरुक्तो, वेदस्य चाऽऽयुष इहैव प्रवर्तकश्च ।
सर्वेश्वरः सकलरोग-निवर्तकश्च, धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु ॥३॥

अश्वत्थ - पिप्पल - लवङ्ग - गुडूचिकानां,
सुण्ठयष्टवर्ग - गुड - कृष्णमरीचिकानाम् ।
लोकोत्तरान् गुणगणानिह वेत्ति सम्यग्,
धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु ॥४॥

विल्वा कपित्थ - रजतादि - सुवर्णकानां,
जावित्र - जायफलका - त्रिफलाऽऽह्वयानाम् ।
लोकोत्तरान् गुणगणानिह वेत्ति सम्यग्,
धन्वन्तरिः सभगवान् मम शं तनोतु ॥५॥

देवाऽसुरेषु बहुशः कलहायमानेष्वादाय सौधकलशं जलधेः संसार ।
पात्रेषु भक्तवरकेषु वितीर्णवान् यो, धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु । ६॥

माधुर्यसिन्धुरपि यः किल धैर्यसिन्धुः,
सौन्दर्यसिन्धुरपि यः खलु शीलसिन्धुः ।
आर्तेषु जीवनिवहेषु दयादि-सिन्धु–
र्धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु ॥७॥

नैतादृशी सुकरुणा क्वचिदेव दृष्टा, नैतादृशं सुहृदयं क्वचिदेव दृष्टम् ।
एवं विचार्य मयका भृशमर्थ्यतेऽसौ, धन्वन्तरिः स भगवान् मम शं तनोतु ॥८॥

वेदाग्नि-शून्य-कर-सम्मित-विक्रमाब्दे, वृन्दावने शुभद आश्विनकृष्णपक्षे ।
रामात्तचित्त-भगवज्जन-प्रेरणातः स्तोत्रं त्विदं रचितवान् वनमालिदासः ॥९॥

व्याख्यान-दानविधया भुवि सज्जनानां, शंकाकलंकमिहभूरि विमोचयन्तम् ।
साधुस्वभाव-शुभशीलयुतं दयालुं श्रीस्वामिरामसुखदासमहंनतोऽस्मि ॥१०॥

समर्पणकालः वि० सं० २०३४

करुणापतित्रिपाठी, कमलापतिरिव हितो नृणाम्।
तस्येदं करकमले, काव्यं कर्त्रैव विन्यस्तम्॥
स जयति मण्डनमिश्रो, मण्डनमिश्र इव सर्वशास्त्रज्ञः।
तस्येदं करकमले, काव्यं कर्त्रैव विन्यस्तम्॥
सीतारामाख्य-विदुषः करपङ्कजयोरिदम्।
समर्पितं हरिप्रेष्ठ-काव्यं कर्त्रैव सादरम्॥
श्रीशारदाप्रसादस्याऽऽशुकवेः करकंजयोः।
समर्पितं हरिप्रेष्ठ-काव्यं कर्त्रैव सादरम्॥
श्रीवासुदेव-करपंकजयुग्ममध्ये, काव्यं समर्पितमिदं हरिप्रेष्ठ-संज्ञम्।
दृष्टवैव सादरमिदं च निजाशिषा मां पूर्णायुषं स कुरुतां वनमालिदासम्॥

उपगीतिछन्दः—

यद्यप्याशुकवित्वं, निर्मातुं नास्मि शक्तोऽहम्॥
तदपि हरिप्रेरणया, निःसरति यथा सुवच्मि तथा॥
अतुलकृष्ण-कराम्बुजयोरियं, सविवृतिः सुकृतिः सुसमर्प्यते।
समवलोक्य समन्तत आदराद्, वितरतात् स हि टीकयितुः शुभम्॥

निर्माणकालः वि० सं० २०३४

यदा मम लोचनयोर्मुक्ताविन्दुरासीत्
तदा मन्मुखात् प्रार्थनामयीयमुक्तिराविरासीत्

द्रुतबिलम्बितंछन्दः—

मम तु लोचनयोरुभयोर्गता, सकल-शक्तिरहं करवाणि किम्।
मदनमोहन! देहि दृशोर्बलं, तत इदं त्वयि भो विनिवेद्यते॥१॥

चिकित्साऽनन्तरं सूक्तिरियं प्रादुरभूत्–

शालिनीछन्दः—

आशाऽतीतं कार्यजातं हि जातं, जातं सर्वं कृष्णचन्द्रप्रभावात्।
तस्मान्नित्यं तं सखायं भजेऽहं, वृन्दारण्ये स्वैः समस्तैः समेतम्॥२॥

मथुरायां संस्कृत-साहित्य-संमेलने कृतम्
श्रीमथुरापुरी-वैशिष्टचवर्णनम्
निर्माणकालः वि० सं० २०३४

यद्वासिनामुदयते हृदये तु भक्तिर्मुक्तिं तु दर्शनत एव मुदा ददाना।
काशीशमुख्य-सुर-वन्दित-पादपद्मा, वैकुण्ठनाथ-परिकीर्तित-कीर्तिमाला ॥१॥

या निर्मथ्य च राति ब्रह्म विमलं श्रीकृष्णरूपं पुरा
यां चात्यर्थमलं चकार भगवान् कृष्णः स्वयं जन्मना।
या सर्वासु पुरीषु पट्टमहिषीवास्ते बुधैः सम्मता
सा श्रीमद्मथुरापुरी वदत भोः केषां न वन्द्या भवेत् ॥२॥

'आराध्य राधां भजे' इति समस्या-पूर्ति :—

कृष्णाराधनमेव न श्रुतिमतं हित्वा यदाराधनं
या चाऽऽराधयति व्रजेशतनयं तेनापि याऽऽराध्यते।
यस्याः कीर्तिरलं करोति विमला शास्त्रान्तरालं सदा
तां श्रीमद्वृषभानुभूपतनयामाराध्य राधां भजे ॥१॥

'प्रकाशतामेष जयप्रकाशः' इति समस्या–पूर्तिः—

नारायणस्येव हि यस्य रीतिः, सर्वेषु भूतेषु चराचरेषु।
सत्प्रेरणादायक-सज्जनोऽसौ, प्रकाशतामेष जयप्रकाशः ॥१॥
यदा जने भारतता प्रयाता, स्फूर्तिप्रदाता जनता-विधाता।
त्यागी विरागी जनताऽनुरागी, प्रकाशतामेष जयप्रकाशः ॥२॥
यः कूटनीतेर्विकृतिं जहास, मूर्त्तो व नारायणजो नु हासः।
स्वतन्त्रताया विपुलो विलासः, प्रकाशतामेष जयप्रकाशः ॥३॥
मुरारिदेशाद् मुखान् प्रधानान्, संयोज्य पारस्परिकं विरोधम्।
यो हापयित्वा सफलीचकार, प्रकाशतामेष जयप्रकाशः ॥४॥
विपत्तिकालेऽपि हि यस्तु धीरः सम्पत्तिकालेऽपि महान् गभीरः।
लोकोत्तरो यः सरसः समीरः, प्रकाशतामेषजयप्रकाशः ॥५॥

भक्तिवेदान्त–शोकस्मृतिः

निर्माणकाल : वि० सं० २०३४

श्रीभक्तिवेदान्त-महोदयानां, शोके सभायां हि समागता ये ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ॥१॥

श्रीभक्तिवेदान्त-महानुभावाः, सम्प्राप्त-वृन्दावन-रेणुभावाः ।
अशेषित-प्राकृतदेहभावा, जयन्ति सम्प्राप्त-विशुद्धभावाः ॥२॥

अमरीकादिदेशेषु, येन भक्तिः प्रचारिता ।
तस्य शोकाकुलाः सर्वे, भक्तिवेदान्त-स्वामिनः ॥३॥

श्रीमद्भागवतं सर्वं, भाषायामाङ्गलस्य च ।
अनूदितं च येनैव, तस्य कीर्तिर्गता दिशः ॥४॥

गीतया सह येनैव, चैतन्यचरितामृतम् ।
उक्तमाङ्गलभाषायां, तस्य शोको दुनोति नः ॥५॥

वृन्दावने कृतं येन, मन्दिरं रामकृष्णयोः ।
तस्य शोकाकुलाः सर्वे, शिष्याः सीदन्ति साम्प्रतम् ॥६॥

अधुनोज्झित-देहोऽपि, यशोदेहं समाश्रितः ।
राजते सर्वदेशेषु, व्याख्यां कुर्वन्निवाऽऽदरात् ॥७॥

आदि – मध्यावसानेषु, कृत-वृन्दावनस्थितिः ।
वृन्दावनीयान्नः सर्वान्, प्रभुपादो धिनोति सः ॥८॥

येन प्राकाश्यमानायि, विश्वविद्यालयोऽद्भुतः ।
भक्तिवेदान्तस्वामी सः, प्रभुर्विजयतेतराम् ॥९॥

महामन्त्रं च सर्वत्र, हरेकृष्णेति वर्णकम् ।
कीर्तिं च स्थापयामास, श्रीचैतन्यमहाप्रभोः ॥१०॥

श्रीभक्तिसिद्धान्तसरस्वतीनां, श्रीभक्तिवेदान्तवरो हि शिष्यः ।
सर्वत्र देशेषु चरन् समन्तात्, प्रकाशते सूर्य इवाम्बरस्थः ॥११॥

चकार चैतानपि शोकश्लोकान्, सभासदस्तैश्च विनीतशोकान् ।
श्रीभक्तिवेदान्तविशोकचेता, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥१२॥

श्रीवृन्दावनस्थ–सुदामाकुटीतः प्रकाशिते श्रीभक्तमालग्रन्थे

शुभ–सम्मतिः

निर्माणकालः वि सं० २०३३

येनाऽकारि गुरोर्निजस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदं
चक्रे 'सख्य-सुधाकरं' य उ महाकाव्यं 'हरिप्रेष्ठकम्' ।
टीकां यश्च लिलेख भाववलितां गोपालचम्पूद्वये
तेनेयं वनमालिदासकविना देदीयते सम्मतिः ॥१॥

गणेशदासेन सुटीकितेऽस्मिन्, श्रीयुक्तरामेश्वरदासभाष्ये ।
श्रीभक्तमालाऽऽह्वय-दिव्यग्रन्थे, मनोऽलिसंघो रमते समेषाम् ॥२॥

कतिपय-टीकाग्रन्था, दृष्टा श्रीभक्तमालायाः ।
ते नो सर्वाङ्गीणा, यथाऽयमास्ते सर्वाङ्गीणः ॥३॥

मधुनि लिल्युरशेषरसाः प्रथा, तदवदत्र हि भक्तिरसाः समे ।
इति विचार्य विचारचणा जना, अपि पठन्तु मनोहर-पुस्तकम् ॥४॥

पूर्वं पूर्वमितस्तु, प्राकाशित-भक्तमालग्रन्थानाम् ।
नैव प्रकाशनरीती, रमणीयाऽऽसीद् यथैतस्य ॥५॥

स जयति गणेशदासः साधुः सौशील्य-सम्पूर्णः ।
यत्कृत-टीकामध्ये, गूढो भावः सर्वोऽपि मूलस्य ॥६॥

श्रीरामेश्वरदासः, स जयति व्याख्या-प्रवीणता-पूर्णः ।
यत्कृत-व्याख्यां श्रुत्वा, चेतो नृत्यति समस्त-श्रोतृणाम् ॥७॥

श्रीभक्तमाल-पठन-श्रवणानुमोदैः, शीघ्रं समेति हृदये भजतां मुरारिः ।
बृन्दाटवी-वसति-लब्धकवित्वशक्ति-, रित्याह भक्तकृपया वनमालिदासः ।८।

श्रीसूर-प्रशस्तिकणिका

सूरपञ्चशती :—वि० सं० २०३५

श्रीसूरदासः कविचक्रवर्ती, सहित्य-संगीत-कलान्तवर्ती ।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरित्रवर्ती, सदैव भूयाद् मम चित्तवर्ती ॥१॥
सीही-ग्रामे हारियाणा-प्रदेशे, जन्मस्थानं यस्य भूमौ प्रसिद्धम् ।
वैशाखस्य पञ्चमी शुक्लपक्षः, प्रादुर्भावेनैव यस्याऽऽप शोभाम् ॥२॥

बाणाऽग्नि-बाण-शशि-सम्मितविक्रमाब्दे,
प्रादुर्बभुव भुवि सोऽपि हि सूरदासः।
गोवर्धनस्य निकटे खलु पारसौली-,
ग्रामे चकार भजनं बहुशो महात्मा ॥३॥

यस्य गुरुत्वं प्राप्तः, श्रीयुतश्रीवल्लभाचार्यः।
सोऽयं कविषु विशिष्टः, सखिषु स्वाचार्य-शिष्येषु ॥४॥

बाणाऽग्नि-शून्य-कर-सम्मितविक्रमाब्दे, सेयं मुदा भवति पंचशतो हि यस्य
राष्ट्रीय-संसदि महोत्सवभावपूर्वं, तं सूरदासकविवर्यमहं नमामि ॥५।

सूर-कवित्वं श्रुत्वा, कः कविर्यो न शिरश्चालयति।
सर्व-रसालंकारं, कारं कारं मनः सरसम् ॥६॥

किं शूरस्य शरो लग्नो, पद्यं सूरस्य किं श्रुतम्।
इति पृच्छति द्रष्टाऽपि, धुनानमुभयं शिरः ॥७॥

श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरित्रजातं, दृष्ट्वैव सर्वं हृदि दिव्यदृष्ट्या।
प्रकाशयामास निबध्य पद्यै-, स्तदेव सद्भक्तहिताय लोके।८॥

सूर-प्रशस्तिकणिका-कणिकापि पीता
दूरीकरोति भवरोगभयं जनानाम्।
इत्याकलय्य भुवि सर्वजनैः समन्तात्
पेया प्रशस्ति-कणिका श्रवणद्वयेन ॥९॥

येनाऽकारि गुरोर्निजस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदं
चक्रे 'सख्य-सुधाकरं' य उ महाकाव्यं 'हरिप्रेष्ठकम्'।
टीकां यश्च लिलेख भाववलितां गोपालचम्पूद्वये
तेनेयं वनमलिदासकविना सूर-प्रशस्तिः कृता ॥१०॥

शुभ-सम्मतिः

वि० सं० २०३५ श्रावणी अमावस्या

श्रीवासुदेव-बुधवर्य-विनिर्मितोऽयं, नन्दोत्सवो विदिततत्त्वदृशा व्यलोकि।
सिद्धान्तवर्णनपरं यदिहास्ति वस्तु, गौडीयवैष्णवचितं तदु सर्वमेव ॥१॥

श्रीवासुदेवकृष्ण:, कृतवान् नन्दोत्सवं यमिह ।
तत्राऽष्टादशश्लोका, विवृतिं याता: सुभाष्यपूर्वं हि ।।२।।
अतस्तु विज्ञैरपि विज्ञतेप्सुभि-, र्विलोकनीया कृतिरेषकाऽऽदरात् ।
विलोकनादेव हि विज्ञता-लता, आनन्दरूपं सुफलं फलिष्यति ।।३।।

श्रीमद्भागवतीये, श्रीमन्नन्दोत्सवे विज्ञै: ।
लिखिता भावा ये ये, ते ते सर्वेऽत्र विद्यन्ते ।।४।।
श्रीवासुदेवेन विनिर्मितेऽस्मिन, नन्दोत्सवेऽपूर्व-रहस्य-पूर्णे ।
स्वसम्मतिं साधु ददाति पाठे, महाकवि: श्रीवनमालिदास: ।।५।।

श्रीस्वामिरामसुखदास-लिखित-गीता-परिमाणलेखोपरि

शुभसम्मति: वि० सं० २०३५

गीताया:श्लोकानां, परिमाणं निश्चितं कृतवान् ।
शास्त्र-विचारणपूर्वं, श्रीस्वामी रामसुखदास: ।।१।।
शास्त्रक्षीराब्धिमुन्मथ्य, निजधीमन्दरेण भो: ।
श्रीरामसुखदासेन, गीतापरिमिति: कृता ।।२।।
शास्त्रसिन्धावशक्तानामूहाऽपोहविमर्शने ।
बालानां सुखबोधाय गीतापरिमिति: कृता ।।३।।
श्रीस्वामिरामसुखदास-सुविज्ञवर्यै-
र्गीताश्रुते: परिमितेस्तु व्यलेखि लेख: ।
तत्सत्यतोपरि निजानुमतिं ददाति
श्रैष्ठयं विचार्य सुकविर्वनमालिदास: ।।४।।

भूतपूर्व शिक्षामन्त्री भारत सरकार डॉ० त्रिगुणसेन जी

त्रिगुणसृष्टिरियं त्रिगुणैर्मता, त्रिविबुधै रचना-हृति-रक्षणा ।
त्रिगुणसेनकृतं निखिलं जगत्, त्रिगुणसेनवराय नमोऽस्तुते ।।१।।

शुभसम्मति: वि० सं० २०३३ वैशाखकृष्णा अमावस्या

श्रीलक्ष्मीधरशास्त्रिणा विरचिता नाम्नां तु या कौमुदी
तट्टीकामपि चन्द्रिकां समकरोत् कानाइलालो बुध: ।

वङ्गीयाक्षरमुद्रितापि सरला सन्मात्र-सत्सौख्यदा
तस्माच्छ्रीवनमालिदासकविना तेने स्वयं सम्मतिः ।।१।।
कानाइलालटीकाढ्या भगवन्नाम-कौमुदी ।
अवश्यमेव द्रष्टव्या विबुधैरबुधैरपि ।।२।।

शब्दब्रह्म-शतके सम्मतिः वि० सं० २०३५

श्रीलहरिशरणशास्त्री, चक्रे श्रीशब्दब्रह्म-शतकं यत् ।
श्रीशब्दब्रह्मतत्त्व-, जिज्ञासुभिस्तदवश्य-पठनीयम् ।।१।।
नेपालदेशोद्भवकेन येन, हरेश्च नित्यं शरणागतेन ।
व्यलेखि शब्दे शतकं विचित्रं, तत् सर्वविज्ञैरपि मान्नीयम् ।।२।।

श्रीनिम्बार्कजयन्तीमहोत्सवे समागतानां

सर्वेषामभिनन्दनम्

निर्माणकालः वि० सं० २०३५ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा

राधासर्वेश्वरशरणदेवाह्वयाऽऽचार्यवर्यः
श्रीजीत्याख्यामेपि च खलु यः सान्वयां संविभर्ति ।
निम्बादित्यं निजसुचरितैर्नित्यसन्तं करोति
सोऽयं सर्वान् सुखयतितरां राजमानः सभायाम् ।।१।।
स जयति बदरीनाथो, बदरीनाथ इव सर्वसंपूज्यः ।
कुलपतिरतिशय-विदतः, सम्प्रत्यस्माकमध्यक्षः ।।२।।
मुख्योऽतिथिर्जयति सम्प्रति सर्वमान्यः
श्रीस्वामिनाथन इति प्रथितः पृथिव्याम् ।
प्राचार्य एव नहि केवलमेष पीठे
विज्ञेषु विज्ञतमता अपि यस्य वित्ताः ।।३।।
श्रीलश्रीस्वामिनाथः स जयति विदितो विज्ञसम्मानकर्ता
सौजन्यं यस्या दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरि चेतो मदीयम् ।
यस्यैवाऽनुग्रहेण प्रकटितविभवेनाऽस्मि दत्ताऽवलम्बः
श्रीमद्गोपालचम्प्वाः प्रकटनविधये साहसेन प्रवृत्तः ।।४।।

श्रीब्रजवल्लभशरण:, श्रीयुतगोविन्दशरणश्च ।
अपूर्व-महोत्सवकरणे, द्वावप्येतौ सुनिपुणौ स्तः ।।५।।

श्रीवासुदेवकृष्ण:, कृष्ण इव नीतौ सुनिष्णातः ।
सर्वसमन्वयकरणे, अयमपि संयोजकः कुशलः ।।६।।

आचार्यनिम्बार्कजयन्तिकायां, समागता ये तु महानुभावा: ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य:, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।७।।

वाराणसीतस्तु समागता ये, समागता ये च तथेन्द्रप्रस्थात् ।
समागता ये मथुरापुरीतो, बृन्दावनाद् ये च महानुभावा: ।।८।।

येवाऽन्यतश्चैव समागताः स्यु:, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य–, स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ।।९।।

येषामहं वेद्मि न नामधेयं, न रूपधेयं न च भागधेयम् ।
समागता ये पुरुषप्रधाना:, सर्वानिहं तानपि पूजयामि ।।१०।।

येनाऽकारि गुरोर्निजस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदं
चक्रे 'सख्य-सुधाकरं' य उ महाकाव्यं 'हरिप्रेष्ठकम्' ।
टीकां यश्च लिलेख भाववलितां गोपालचम्पूद्वये
तेनेदं वनमालिदासकविना देदीयते भाषणम् ।।११।।

निम्बे ह्यर्को दर्शितोऽस्तंगतेर्के, स्वाचार्यत्वं कुर्वता येन व्यक्तम् ।
भक्तेभ्योऽच्छा कामधेनुश्च दत्ता, तं निम्बार्काचार्यवर्यं नतोऽस्मि ।।१२।।

नानादेशभुवां नृणां भुवि यथा दिल्ल्यां हि सम्मेलनं
श्रीमद्भागवते समस्तनिगमार्थानां हि सम्मेलनम् ।
सर्वेषां पयसां समुद्रसलिले यद्वद्धि सम्मेलनं
तद्वत् सत्प्रतिभाजुषां हि विदुषामद्यास्ति सम्मेलनम् ।।१३।।

इत्येषा वाङ्मयीपूजा सर्वेषां हि कृता मया ।
एतया मयि तुष्यन्तु सर्वे येऽत्र सभासदः ।।१४।।

श्रीवृन्दावनीये धर्मसंघ-प्रशिक्षण-शिविरे समवेतानां
महानुभावानामभिनन्दनम्
निर्माणकाल : वि० सं० २०३५

अयि ! श्रीभागवत-परमहंस-परिव्राजकाचार्यवर्य ! वर्यसमस्त-शास्त्र-पारावारपारदृश्व ! यम-नियमाद्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठ ! निष्ठजन इव श्रीहरिहरानन्दमयपादारविन्दद्वन्द्व-मकरन्द-मिलिन्द – वर ! वरचरित ! चरितानुरञ्जित-साधुलोक ! लोकख्यात ! ख्यातयशःशीतकर ! करभाजन इव करभाजन ! भाजनजन-सभाजित ! जितनास्तिकलोक ! लोक-लोकान्तरख्यात-सनातनधर्मरक्षणैकदीक्षागुरो ! स्वामिन् ! विनति-ततिपुरः-सरं सप्रश्रयं विज्ञप्तिरियं यत् श्रीमत्प्रेरणयैव प्रवर्तिते वृन्दावनीये धर्मसंघ-प्रशिक्षणशिविरे समवेतानां समेषामेषां महानुभावानां स्वागतं करवै, अभि-नन्दनं चातनवै ।

तत्र प्रथमं धर्मसंघस्थापकाभिनन्दनम्—

सनातनं धर्ममिहोपशिक्षयन्, वैराग्यसिन्धुं परितः प्रवर्धयन् ।
भक्तेर्महत्वं स्वयमेव दर्शयन्, विराजते श्रीकरभाजनो मुनिः ॥१॥
आनन्दकन्दं परितःप्रवर्तयन्, समन्ततो नास्तिकलोकमर्दयन् ।
जनान् निजे कर्मणि संप्रवर्तयन्, विराजते श्रीकरभाजनो मुनिः ॥२॥
निजसनातनधर्म-रिरक्षिषा-, वशत एव हरिः स्वयमागतः ।
इति विचारपरैर्व्रजवासिभिः, सविनयं यतिराडभिनन्द्यते ॥३॥

धर्मसंघाऽध्यक्षाऽभिनन्दनम्

श्रीचन्द्रशेखरतया प्रथमं प्रसिद्धः, पश्चान्निरञ्जनतया भुवि यस्तु वित्तः ।
ऐक्यं विभाति हि हरस्य हरेश्च यत्र, तं शंकरं ननु निरञ्जनदेवमीडे ॥४॥
धर्मं श्रुतेः समवितुं ननु बद्धतीर्था-, स्तस्यैव रक्षणनिमित्तमधीततीर्थाः ।
तस्य प्रचारणकृते कृतसर्वतीर्था, स्तस्माज्जयन्ति हि निरञ्जनदेवतीर्थाः ॥५॥

उपाध्यक्षाऽभिनन्दनम्—

माधवो हि यथा सर्वधर्मसंघस्य चाश्रमः ।
तथा विराजतेऽस्माकं स्वामिश्रीमाधवाश्रमः ॥६॥

प्रचारमन्त्रिणोऽभिवन्दनम्

सरस्वती यथा सर्वानानन्दयति सर्वदा ।
तथा प्रचारमन्त्री श्रीसदानन्दसरस्वती ॥७॥

सन्मार्गपत्र-सम्पादकाऽभिनन्दनम्—

श्रीनन्दनन्दन य, आनन्दयति तेन यस्य वाऽऽनन्दः ।
स जयति सन्मार्गस्थः, श्रीस्वामी नन्दनन्दनानन्दः ॥८॥
सनातनं रक्षति यः सनातनं, नरोत्तमानामपि यस्तु चाश्रमः ।
जयत्यजस्रं स हि धर्मरक्षणात्, संमाननीयो हि नरोत्तमाश्रमः ॥९॥
परमविरक्तो रक्तः, श्रीसनातनधर्मरक्षायाम् ।
स जयति धर्माधारः, श्रीस्वामी श्रीशिवानन्दः ॥१०॥
वाराणसीतस्तु समागता ये, समागता ये च तथेन्द्रप्रस्थात् ।
समागता ये मथुरापुरीतो, वृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ॥११॥
येवाऽन्यतश्चैव समागताः स्युः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य,-स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ॥१२॥
येषामहं वेद्मि न नामधेयं, न रूपधेयं न च भागधेयम् ।
समागता ये पुरुषप्रधानाः, सर्वानहं तानपि पूजयामि ॥१३॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, सर्वानत्राऽऽगतान् विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥१४॥

निर्माणकाल : वि० सं० २०३५

श्रीहरिगुरुवैष्णव-पदारविन्द-द्वन्द्वमकरन्द-पानोन्मत्त-मिलिन्दवरायाः, शुद्धाद्वैतवेदान्त-सिद्धान्त-पटुतरायाः-श्रीमद्भागवत-भाषणचतुरायाः, देशाटन-निरताया अतएव जीवोद्धार-परायाः, विद्वत्कविजनसंमाननपरायाः, व्रजयात्राच्छलेन प्रथमवारमेव व्रजमहिम-दर्शन-संलग्नायाः, सकल-शास्त्रपारावाराऽवारपारीण-गोस्वामिवर्य-श्रीमधुसूदनलालजी-महाराजसुतायाः, श्रीवेटीतिविख्यातायाः, श्रीइन्दिराया

अभिनन्दनम्

निर्माणकालः वि० सं० २०३५

यस्य श्रीशुभदर्शनेन नितरां पूतं मनो जायते
यः शीघ्रं शरणागतान् निजजनान् तीव्रादभयात् त्रायते ।

तं जीवं स्वमिवातनोति नुतितो यः कोऽपि शब्दायते ।
वन्दे तं परमेश्वरं सुरगुरुं श्रीद्वारकाधीश्वरम् ।।१।।

समागता ये मथुरा-पुरीतो, बृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ।
येवाऽन्यतश्चैव समागताःस्युः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।२।।

या मातरश्चैव तथा भगिन्य–, स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ।
येषामहं वेद्मि न नामधेयं, न रूपधेयं न च भागधेयम् ।
समागता ये पुरुष-प्रधानाः, सर्वानहं तानपि पूजयामि ।।३।।

पूर्वं ह्येका विदुषी, दृष्टा मयका प्रभावती राजे ।
द्वितीयेयमद्वितीया, विद्वन्मान्या हि 'इन्दिरा बेटी' ।।४।।

व्रजभ्रमणवाञ्छया किमु विहाय लोकं परं
ब्रजेन्द्रमिलनाशया भ्रमति वा व्रजं सर्वतः ।
न भावगुरुमन्तरा मिलति वा व्रजेन्द्रात्मज
इति प्रथयितुं जने चलति चालयन्तीन्दिरा ।।५।।

नानादिग्विदिगागतान् बहुजनान् स्वीये प्रबन्धे स्थितान् ।
सौख्ये स्थापयितुं स्वयं निजसुखं हित्वापि शारीरिकम् ।
कष्टं सोढुमियं परिक्रमणजं यद्यप्यनर्हा सती
माधुर्यात् तदपि स्वयं प्रथयते यौधिष्ठिरीं प्रक्रियाम् ।।६।।

श्रीमधुसूदन–पुत्री, शुद्धाऽद्वैताभिधान–सत्कर्त्री ।
व्याख्यानेन शुकोक्ते–, र्भक्तावज्ञान–संहर्त्री ।।७।।

श्रीवल्लभाचार्यमतप्रवीणा, निजस्वरेणार्चित-भव्यवीणा ।
देशाटनेनार्जित-कीर्तिरत्ना, वित्पूजने चापि कृतप्रयत्ना ।।८।।

श्रीमद्भागवतीय - भाषणविधौ पुष्टि - स्थिति - स्थापिका
शुद्धाद्वैतमत - प्रचारणविधौ विज्ञत्व - विज्ञापिका ।।
या श्रीकृष्ण - पदारविन्दयुगल - ध्यानाऽध्वनोऽध्यापिका
सेयं मूर्तिमतीन्दिरा विजयते गोवर्धन - प्रापिका ।।९।।

अभिनन्दति रतिपूर्वं, विद्वन्मान्यां हि इन्दिराबेटीम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।१०।।

वर-वध्वोराशीर्वादात्मकः शुभसन्देशः

निर्माणकाल : वि० सं० २०३५

श्रीकाञ्चीपुर-नामनि, नगरे शुभसभ्यतायुक्ते ।
श्रीस्वामिनाथपुत्र्याः, शुभो विवाहोत्सवो लसति ।।१।।

शोभना - रविशेखरयोः पाणिग्रहणसंस्कृतिः ।
श्रीकृष्णचन्द्रकृपया सदा भवतु शोभना ।।२।।

शर - दहन - ख - हस्तैर्निर्मिते विक्रमाब्दे
भवति परिणयो यः शोभनः शोभनायाः ।
भवतु स वर-वध्वोः सौख्यदः सर्वदैव
शुभमपि वनमाली कृष्णचन्द्रः करोतु ।।३।।

शोभना-रविशेखर, उभयोर्युगलं सुसभ्यतायुक्तम् ।
निर्वाहयतु सहार्दं, जीवनं यौगपद्येन ।।४।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रो वर- वध्वोरेतद्-युगलं दीर्घायुः कृत्वा निज-श्रीमुखोक्तगीतोपदिष्ट–वर्णाश्रम–धर्मपालनं कारयन् तद्हृदयकमले एतादृशं दृढानुरागमुत्पादयतु येन युगलमेतद् भगवच्चरणारविन्दस्याऽऽश्रयं कदापि न त्यजतु ।

गृहस्थाश्रमो रथतुल्यः । वर-वधूयुगलं तस्य चक्रद्वयपुल्यम् । गृहस्था-श्रमस्य व्यवस्था उभयोः सद्भावेनैव लोकद्वयोपकारिणी भवति ।

भगवान् श्रीकृष्णो युवाभ्यां सद्बुद्धिं ददातु । सन्मार्गं दर्शयतु । युवयोः कल्याणं च करोतु । तथा युवयोर्मतिः श्रीभगवच्चरणारविन्दयोर्दृढा भवतु ।

श्रीस्वामिनाथपुत्री, श्रीशिवरामार्यपुत्रश्च ।
यावज्जीवमजस्रं, सनातनधर्माऽनुरागिणौ स्याताम् ।।५।।

श्रीशोभनाया रविशेखरेण, विवाहकाले शुभपत्रमेतत् ।
वृन्दावनात् प्रेषयति स्म प्रेम्णा, महाकविः श्रीवनमालिदासः ।।६।।

श्रीवृन्दावन-शोधसंस्थानस्य नवमवार्षिकोत्सवे पठिता कविता

निर्माणकाल : वि० सं० २०३४ विहार पंचमी

लेखक—आशुकविः श्रीवनमालिदासशास्त्री, वृन्दावन

श्रीशोधसंस्थानमहोत्सवेऽस्मिन्, समागता ये तु महानुभावाः।
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।१।।

श्रीपादश्रीमहाराजाऽध्यक्षतायां महोत्सवः।
शोधसंस्थानवर्यस्य नवमोऽद्य प्रवर्तते ।।२।।

कन्हैयालालगुप्तोऽयमुपाध्यक्षो विराजते।
यस्य प्रेरणया सर्वं कार्यं चलति साम्प्रतम् ।।३।।

मन्त्रिणी पालिवालेयं नाम्ना प्रेमलता मता।
विराजतेतरां सम्यक् सिञ्चन्ती प्रेमधारया ।।४।।

विराजतेऽतिथिः सौम्यः प्रभुदयालमीतलः
शोधसंस्थावर्यस्य नवमेऽस्मिन् महोत्सवे ।।५।।

श्रीरामदासगुप्तेन कृतः परिश्रमो महान्।
यत्फलं शोधसंस्थानं वृन्दाभुवि विराजते ।।६।।

विश्वम्भरप्रेरणया विकाशः, विश्वम्भरप्रेरणया प्रकाशः।
विश्वम्भरप्रेरणयैव सर्वं, विश्वम्भरः प्रीतिमुपैतु सोऽयम् ।।७।।

श्रीचैतन्य-यशोलता-विमलता-विस्तारकं तारकं
षड्गोस्वामिगणादिविज्ञमहतां सूक्तिप्रथाधारकम्।
सर्वेषां प्रतिभाजुषां हि विदुषां यत् कीर्तिविस्तारकं
श्रीवृन्दावनवासि तद् विजयतां संशोध-संस्थानकम् ।।८।।

श्रीवृन्दावनीय-शोधसंस्थानस्य दशमे वार्षिकोत्सवे समुपेतानां महानुभावानामभिनन्दनम्—

निर्माणकालः वि॰ सं॰ २०३५

जयति श्रीमंजुलिका, निदेशिका या सांस्कृतिक-कार्याणाम् ।
अधुनाप्यस्मान् सर्वान्, धिनोति मंजुलिकया वाचा ।।१।।
मुख्योऽतिथिर्जयति मे बहुमाननीयः, श्रीपादपद्मरसिको विदितो महात्मा ।
आजन्म भक्तिपथसाधक-रम्यकर्मा, कर्माणि यस्य सकलानि हरिप्रियाणि ।।२।।
कन्हैयालालगुप्तोऽयं, गुप्तं कार्यं करोति नः ।
समर्थः कार्यकारी च, पदाध्यक्षो विराजते ।।३।।
सम्प्रति प्रेमलताऽपि, प्राचार्या पालिवाला च ।
प्रेमलतेव जनानां, हरिभक्तौ-मन्त्रिणी जयति ।।४।।
श्रीरामदासो जयतीह शोध-, संस्थान-संस्थापन - दिव्यकर्मा ।
यस्यैव सत्प्रेरणया विभाति, संस्थानकं सर्वसुखं वितन्वन् ।।५।।
अभिनन्दति रतिपूर्वं, सर्वानत्रागतान् सुजनान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।६।।
सभापतिर्योऽद्य हि सूरदास-, महाकवेः पंचशतीसभायाः ।
तन्माननेनैव हि सर्वमान-, स्तस्यैव संमाननमातनोमि ।।७।।
श्रीमोतिलालोऽपि च विज्ञवर्यो, विराजते भारतभूमिरत्नम् ।
विचारपूर्वं हि विलोक्य योऽसौ, रिसर्चकार्यं सफलीकरोति ।।८।।
विद्यानिवासो जयतीह यस्मिन्, विद्याःसमस्ता निवसन्ति नित्यम् ।
तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-, रिक्षुप्रकाण्डेषु सिता यथैव ।।९।।

श्रीवृन्दावनीयशोधसंस्थाने समवेतानां शिक्षामन्त्रिप्रभृतीनामभिनन्दनम्

वि॰ सं॰ २०३६

स जयति सुकर्णसिंहः, शिक्षामन्त्री सुभारतस्यापि ।
यस्यादेशात्पुनरपि, यास्यत्युच्चैर्हि वैदिकी शिक्षा ।।१।।

क्रियासिद्धौ ख्यातं भवति करणं साधकतमं
भवान् सच्शिक्षाया अपि करणसिंहःसुविदितः ।
अतः शिक्षामन्त्री भवति हि भवान् साधकतम–
स्ततो देवानां वागपि सुविपुलं यास्यति पदम् ।।२।।

स जयतिश्रीलकपीन्द्रः, कपीन्द्र इव रामचन्द्रस्य ।
दक्षःसत्सेवायां, दक्षः सत्काव्यकरणेऽपि ।।३।।

श्रीरामदासो जयतीह शोध-, संस्थान-संस्थापन–दिव्यकर्मा ।
यस्यैव सत्प्रेरणया विभाति, संस्थानकं सर्वसुखं वितन्वन् ।।४।।

कन्हैयालालगुप्तोऽयमुपाध्यक्षो विराजते ।
यस्य प्रेरणया सर्वं कार्यं चलति साम्प्रतम् ।।५।।

मन्त्रिणी पालिवालेयं नाम्ना प्रेमलता मता ।
विराजतेतरां सम्यक् सिञ्चन्ती प्रेमधारया ।।६।।

संशोधसंस्थानमहोत्सवेऽस्मिन्, समागता ये च महानुभावाः ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।७।।

श्रीदयानन्द-भार्गव-प्रशस्तिः

निर्माणकाल : वि० सं० २०३५

प्राचीन-वेश-भूषासु भारतीयासु निष्ठितः ।
प्राचां वाचामधिष्ठाता श्रीदयानन्दभार्गवः ।।१।।

दिल्ल्यामध्ययनं च 'रामजस' इत्याख्ये हि विद्यालये
तत्राऽऽध्यापनमेव चोपनिषदां श्रीविश्वविद्यालये ।
यस्याऽध्यापनरीतिकामतितरां शंसन्ति सर्वे जनाः
सोऽयं विज्ञवरः सदा विजयते वेदान्तसिद्धान्तभृत् ।।२।।

श्रीअवनीन्द्रो वाच-, स्पतिरपि यस्याऽऽस सहयोगी ।
सोऽयं जोधपुरस्थे, प्रस्थितो विश्वविद्यालये ।।३।।

रामजसश्रुतिगोष्ठ्यां, संशोधपत्रं हि प्रस्तुतं येन ।
सोऽयं कस्य न विदितो, भार्गवजःश्रीदयानन्दः ।।४।।

"शिशु–स्वभाववर्णनम्"

निर्माणकाल : वि० सं० २०३५

क्षणे क्षणे रोदनमातनोति, क्षणे क्षणे हास्यमथातनोति ।
कालद्वयं हर्षदमेव पित्रोः, शिशोश्चरित्रं सकलं विचित्रम् ॥१॥
शुष्कं रोदनमश्रुपातरहितं हास्यं विना कारणं
रम्यं क्रीडनकं विहाय विकलस्याऽन्यस्य संधारणम् ।
अन्यस्य प्रतिरोध-शोधरहितं चापल्यतो धावनं
ज्ञातुं को नु प्रभुः प्रभोरिव शिशोश्चित्रं चरित्रं चिरम् ॥२॥

श्रद्धाञ्जलिः

वि० सं० २०३६ भाद्र-शुक्ला पंचमी

श्रीसूरदास-स्मृतिकोत्सवेऽस्मिन् समागता ये तु महानुभावाः ।
श्रीमत्किशोरीशरणोत्सवेऽस्मिन्, समागता ये तु महानुभावाः ॥
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ॥१॥
राधावल्लभ-सम्प्रदाय-तिलकं श्रीसूरदासाऽऽह्वयं
लोके साधुशिरोमणिं गुणनिधिं जानन्ति नोके जनाः ।
कीर्तिं तस्य तु कोऽपि नैव सकलां वक्तुं क्षमो मानव-
स्तद् दिग्दर्शनमात्रमत्र करवै जानीत भोःसज्जनाः ॥२॥
जयति किशोरीशरणः, श्रीसूरदासाऽभिख्यया विदितः ।
यस्य चरित्रं चित्रं, चित्रं चित्ते हि चित्रयति ॥३॥
राधाष्टम्यां प्रतिशरदमेवाऽतनोदुत्सवं यः
साधून् विप्रानपि च सकलांस्तर्पयामास भोज्यैः ।
श्यामाकुञ्जं सरसविपिने शोभयामास नित्यं
तस्याऽभावे निखिलमपि वृन्दावनं शोचतीव ॥४॥
श्रीगीताया द्वादशाऽध्यायप्रोक्ताः, सर्वे पूर्णाःसद्गुणा यत्र चासन् ।
संगीतो यस्याऽद्भुत-प्रेमवर्षी, सोऽप्यस्मासु स्नेहवृष्टिं करोतु ॥५॥
सर्वेषु जीवनिवहेषु समानधर्मा, धर्मार्थ-जीवनधरोऽपि विचित्रयोगी ।
योगीशलब्धजनिराजनिरम्यकर्मा, कर्माणि यस्य सकलानि हरिप्रियाणि ॥६॥

य उत्तराखण्ड-सुलब्धजन्मा, जन्मादिनाऽलंकृत-मातृकर्मा ।
कर्माणि बाल्येऽपि हि यस्य सर्वं-, चित्राणि सोऽयं जयतान्महात्मा ॥७॥
उभयलोक-सुयोग्य-भिषग्वरः, सकल-जीवनिकाय-दयापरः ।
हित-सुधर्म-सुमर्म-सुभाषणः, सकलविज्जयतान्मृदुभाषणः ॥८॥

इन्द्रप्रस्थे यवनतनयां रोगमुक्तां चकार
वैदेशेऽपि स्थितनिजजनं मृत्युमुक्तं चकार ।
श्यामाकुञ्जं निजसुचरितैर्यः सदाऽलं चकार
सोऽयं जीयाज्जगति जनता प्रेमभारं बभार ॥९॥

प्रसन्नचित्तः सकलेष्टदाता, समस्त-प्राणि-प्रहितेषु लग्नः ।
उदारतायुक्त-सहिष्णुताढ्यः, स सूरदासो जयतान्महात्मा ॥१०॥

आचार्यत्वे जगति परमानन्ददासं महान्तं
यः स्वीचक्रे हरिसुभजने निष्ठितं तं नितान्तम् ।
नित्यं पश्याम्यहमिह जनान् मोदकैर्मोदयन्तं
तं वन्देऽहं जनिमृतिभयात् सज्जनान् मोचयन्तम् ॥११॥

शोके तु यो निजनान् विकलान् विधाय
कुञ्जे हरिं सुखयितुं दयिता-सुखाय ।
उक्त्वैव योऽन्तरदधान्निज-प्रेष्ठभक्तं
सोऽयं सदा जयति नित्य-निकुञ्जमध्ये ॥१२॥

श्रीसूरदास-विरहोत्सवके सभायां, सद्वैष्णवैः सुपरिदर्शित-दीनतायाम् ।
शोकेऽपि तद्गुणगणैः परिहर्षितायां, श्रद्धाञ्जलिं वितनुते वनमालिदासः ॥१३॥

श्रीलकिशोरीशरणः, सुमनोभिर्वाग्लता-निचितैः ।
परितुष्यतु दिव्यात्मा, दीने वनमालिदासेऽपि ॥१४॥

भक्तिप्रज्ञान-श्रीकेशवस्तोत्रम्

निर्माणकालः वि॰ सं॰ २०३६ पौषशुक्ला पंचमी

आचार्यो यस्य सिद्धो भुवि विदितयशा भक्तिसिद्धान्तसंज्ञः
श्रीमद्गौराङ्गदेवः परिकरसहितो यं स्वयं स्वीचकार ।

कृष्णप्रेष्ठस्वरूपोऽगति-गतिरपि यो गौरशक्तिस्वरूपो
भक्तिप्रज्ञान-संज्ञं यतिवरमहितं केशवं तं भजामः ।।१।।

आजन्म ब्रह्मचारी भवति हि भुवि यः श्रीगुरुर्यस्य तद्वत्
द्वावप्येतावधातां हरिरतिरहिते भक्तिवेदान्त-तत्त्वम् ।
गुर्वर्थे त्यक्तभोगो हरिगुरुयुगले भाव-भक्ति-प्रवीणो
भक्ति - प्रज्ञान - संज्ञं गुरुवरमनिशं केशवं तं भजामः ।।२।।

गौराविर्भावभूमौ प्रभुपदनिरतो श्रीलमायापुरे यो
भक्ति-श्रीवृद्धिकारी कमलमृदुतनुर्दीर्घवाहुर्विशालः ।
सौन्दर्येणाश्चितश्री र्निजपदनिरते मातृवात्सल्यकर्ता
भक्ति-प्रज्ञान-संज्ञं गुरुवरमनिशं केशवं तं भजामः ।।३।।

यं भावं कृष्णचन्द्रः कुरुभुवि नितरां दत्तवानर्जुनाय
यं वा श्रीद्वारकायां स्वगमनसमये संदिदेशोद्धवाय ।
कालाल्लुप्तं तमागात् पुनरपि कृपया दातुकामो जनाय
तस्मै नित्यं नमस्ते हरिमयवपुषे स्वामिने केशवाय ।।४।।

प्रभुपादकृपा-द्वारा, 'कृतिरत्न'—पदाश्चितः
पारमार्थिक-सत्यस्य, वक्ता निर्भीकतां गतः ।।५।।

वज्रादपि कठोरो यः, कुसुमादपि कोमलः ।
निज-सिद्धान्त-रक्षार्थं, पाखण्ड-गज-केसरी ।।६।।

प्रभुपाद-मनोऽभीष्ट—, सेवको गुरुनिष्ठकः ।
श्रीमद्गौरकिशोरस्य, धारा-संरक्षकश्च यः ।।७।।

गुरुसेवार्थमेतेन, कूरेशस्वामिना यथा
आदर्शो दर्शितस्तद्वत्, कोऽन्यो दर्शयितुं क्षमः ।।८।।

स्वरूपदामोदर-रायरामा—, नन्दस्य यो रूप-सनातनस्य ।
मताऽनुगत्यं रघुनाथकस्य, जीवस्य चक्रे बलदेवकस्य ।।९।।

संसार-दावानलतो ररक्ष, सद्भक्ति-पीयूष-सुवृष्टि- सृष्टया ।
जनान् निजान् वत्सलता-वशः सन्, तं केशवं देवमहं समीडे ।।१०।।

गौड़ीय-वेदान्त-समित्-प्रतिष्ठा, बृहन्मृदङ्गाकृति-यन्त्रनिष्ठा ।
कृता नवद्वीप उदारचेष्टा, यया नवीना नव-मन्दिरेष्टा ॥११॥
गौड़ीय-सिद्धान्त-मतिप्रदानि, प्रकाशितानीह सुपुस्तकानि ।
गौड़ीययुग्-भागवताख्यपत्रिका, प्रकाशिता भक्तसमूह-सौख्यदा ॥१२॥
वृषभानुसुता-प्रियता-प्रहित–, व्रजराजसुत-प्रियता-प्रहितः ।
नयन-प्रियतामदधादपि नः, प्रभुकेशवदेवममुं प्रणुमः ॥१३॥
भक्ति-प्रज्ञान-संज्ञस्य, केशवस्य स्तवं त्विमम् ।
ये पठन्ति नरा नित्यं, तेषु हृष्यति केशवः ॥१४॥
श्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति–, नाम्नां सुशिष्यस्य चकार भक्त्या ।
स्तोत्रं त्विदं केशवसंज्ञकस्य, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥१५॥
षड्-राम-शून्य-कर-सम्मित-विक्रमाऽब्दे, वृन्दावने रविदिने शुभ-पौष-शुक्ले ।
वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्व-शक्तिः,स्तोत्रं त्विदं रचितवान् वनमालिदासः॥

श्रीवृन्दावनीय-श्रीटोपीकुञ्जाध्यक्षस्य महतः श्रीसनत्कुमारदासस्य नित्यनिकुञ्ज–प्रवेश-महोत्सवे

पठिताः कविताः—वि० सं० २०३५ पौषी पूर्णिमा

श्रीमन्माधवदासं, पूर्वंमहान्तं हि टोपीकुञ्जस्य ।
श्रीभक्तमालिकायाः, कथकं सततं नमस्यामि ॥१॥
बहुशो दृष्टचरं तं, चरन्तं वृन्दाविपिन-कुञ्जेषु ।
महतां सेवानिरतं, विरतं, संसार-पुञ्जेषु ॥२॥
तदनु च विषय-विरक्तं, रक्तं श्रीराधिका-चरणे ।
नुमो महान्तं सरलं, श्रीलसनत्कुमारदासं हि ॥३॥
सनत्कुमारो भगवान्, कुमार इव सर्वदा ।
सनत्कुमारदासोऽपि, तथा वृद्धोऽपि भाषितैः ॥४॥
सदा निकुञ्ज - वासकं, सराधकृष्णदासकम् ।
सनत्कुमारदासकं, नमामि सत्प्रहासकम् ॥५॥
निकुञ्जसेवानिरतस्य नित्यं, सतां हि सेवास्वपि यस्य चित्तम् ।
सनत्कुमारः स श्रिनोतु सर्वान्, साधून् स्वशिष्यांश्च निरस्तगर्वान् ॥६॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, नित्यनिकुञ्जे विराजमानं तम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।७।।
श्रीलमाधुरीशरणः, श्रीराधेश्यामदासश्च ।
राधाब्रजेशशरणः, सर्वेऽप्येते सुधन्या भोः ! ।।८।।
श्रीमन्मुकुन्दशरणादिक-विज्ञवर्या, गर्वीलिदेवि - शरणादिकसाधुवर्याः ।
अन्येऽपि ये च गृहिणो धनिनो विरक्ता-,स्टोपीनिकुञ्जशरणाः सकला हि धन्याः।।

श्रीवृन्दावन की महिमा का कवित्तः— वि० सं० २०३६

श्रीवृन्दावन धाम ! तेरी महिमा को कौन कहे
तेरे जो विहारी जू हैं वेहू याते हारे हैं ।
वेही वनमाली जाकी लीला है निराली अहो !
ते हू बहुबार आप मन में विचारे हैं ।।
तेरे तृण फलन को आस्वाद लेन हेतु
स्वयं वत्स ग्वालबाल बनिके पधारे हैं ।
ब्रह्म-मोह लीला में ये भाव सो दिखाय दियो
याते 'वनमालिदास' तो ही पै जू वारे हैं ।।१।।

श्रीरेवती-स्तोत्रम्

निर्माणकाल : वि० सं० २०३६ माघ कृष्णा एकादशी

सत्ये युगे प्रथमकेऽपि जनिर्यदीया,
वैवाहिकी शुभक्रिया बहुद्वापरान्ते ।
वृद्धाऽपि या भवति भो ! नवयौवनढ्या,
तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ।।१।।
आदाय यां स्वतनयां गतवान् ककुद्मी, ब्रह्मालयं वरमवाप्तुमवेत्य यस्याः ।
आगत्य यामिह समर्पितवान् बलाय, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ।।२
कुब्जा कृता सरसवेणुधरेण ऋज्वी, तद्वत् कृता हलधरेण हलेन ह्रस्वा ।
भ्रात्रोर्द्वयोरपि च या बहुमाननीया, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ।।३
यस्या जनिः समभवत् किल सूर्यवंशे, वैवाहिकी शुभक्रियापि च चन्द्रवंशे ।
वंशद्वयं निजयशोभिरलं चकार, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ।।४।।

या सेवनादखिलमङ्गलमातनोति, या कीर्तनाद् हलधरस्य सुखं करोति ।
या प्रह्वणान्निज-जनस्य धनं सुनोति, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ॥५
मूर्त्तेव या सरलता करुणैव मूर्त्ता, वात्सल्यमूर्तिरिव भक्तजनेषु वित्ता ।
भक्तिं ददाति बल-कृष्ण-पदारविन्दे, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् ॥६
सौशील्य-धैर्य-बहु-मार्दवतादियुक्ता, मात्सर्यरोग-रहिता महितापि नम्रा ।
शक्तिं समर्पयति या बलभक्तलोके, तां रेवतीं बलवतीं प्रणमामि नित्यम् । ७॥

यामाराध्य नरो निमज्जतितरामानन्द-सिन्धौ सदा
यां प्रेक्ष्यापि नरस्य नैव पतनं संसार-सिन्धौ क्वचित् ।
यामानम्य नरो न रोदिति भवे भावे निमग्नो भवेत्
तां श्रीमद्बलराम-पादनिरतां सेवस्व भो रेवतीम् ॥८॥

श्रीरेवती-स्तवमिमं भुवि ये मनुष्या, नित्यं पठन्ति सरसं बलदेव-प्रीत्यै ।
भुक्त्वा बलस्य कृपया भुवि सर्वसौख्यं, सम्प्राप्स्यते सुखतया बलसन्निधिस्तैः ॥

षड्-राम-शून्य-नयनैश्च मिते हि वर्षे, श्रीविक्रमार्क-नृपतेरपि माघमासे ।
वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्व-शक्तिः,स्तोत्रं त्विदं रचितवान् वनमालिदासः॥

'श्रीरसिकप्रशस्तिकणिका' निर्माणकाल : वि० सं० २०३६

श्रीहरिगुरुवैष्णव-पदारविन्दद्वन्द्व-मकरन्द-पानोन्मत्तमिलिन्दवृन्दवर ! वरचरित ! चरितानुरञ्जितसाधुलोक ! लोकख्यात ! ख्यात-यशः शीतकर ! करकमलोपलालित-निजसेवकवृन्द ! वृन्दशः सेवितवृन्दावन ! वृन्दावनचन्द्र-रसिक ! रसिकवर ! विज्ञवररसिकविहारिन् ! प्रणतिततिपुरःसरं सप्रश्रयं विज्ञप्तिरियं यदहं श्रीमत्तातचरणरोपित-कल्पलता-कवितासरसमञ्जरी-माधुरीमास्वाद्य द्वित्राणि वचनानि भणानि, तानीमानि सादरं दृग्गोचरी-करिणीयानि—

रसिकविहारी जोशी, योगी योगीश-सत्पुत्रः ।
स जयति धीराधारो, रासोपरि रासवर्षी यः ॥१॥

मुख्यो बुधो जयति मे रसिको विहारी, हारी च सर्वमनसां खलु जन्मयोगी ।
योगीश-लब्धजनिराजनिरम्यकर्मा, कर्माणि यस्य सकलानि हरिप्रियाणि ॥२॥

रामप्रतापशास्त्री, शास्त्रेषु सर्वेषु निष्णातः ।
आसीदद्भुतयोगी, श्रीकृष्णायार्पिताऽऽत्मा च ॥३॥
लोकोत्तरं कवित्वं च, यस्याऽऽस्ते भक्ति–भावितम् ।
यद् दृष्ट्वा भक्तविदुषां, प्रसीदतितरां मनः ॥४॥
विदुषां न च विद्वांसो, दृष्टा लोकेहि सूनवः प्रायः ।
रसिक – विहारी जोशी, रामप्रतापं प्रकाशयति ॥५॥
यङन्त-यङ्लुगन्तस्य, प्रयोगाणां तु सन्ततिः ।
यथा रसिककाव्येषु, तथा नान्येषु दृश्यते ॥६॥
यङन्त-यङ्लुगन्तानां, नामधातूनां प्रयोग-प्राचुर्यम् ।
रामप्रताप-रसिकयोः, काव्येष्वेव दृश्यते नान्येषाम् ॥७॥
गोपालचम्पूमनुभट्टिकाव्ये, विलोक्यते यद्यपि तत्समस्तम् ।
परन्तु तद् व्याकरणं प्रधानं, विलक्ष्य प्रोक्तं नहि काव्यमात्रम् ॥८॥
युष्मत्कृतानि निखिलानि सुपुस्तकानि, देयानि यानि विदुषां मनसां सुखानि ।
अस्यैव हस्तयुगले मम पत्रदातु–र्दृष्ट्वैव तानि मुदितोऽहम लं भवानि ॥९॥
रसिकविहारो जोशी, निजकरकमले समर्पितां दृष्ट्वा ।
चम्पूमेतामतलां, टीकयितरि सुप्रसन्नोऽस्तु ॥१०॥
रसिकविहारी जोशी, निजकरकमले समर्पितं कर्त्रा ।
भवतु विलोक्य सुमुदितः, श्रीहरिप्रेष्ठं महाकाव्यम् ॥११॥
रसिकविहारो जोशो, निजकरकमले समर्पितं कर्त्रा ।
भवतु विलोक्य सुमुदितो, वनमालिप्रार्थनाशतकम् ॥१२॥
यस्याऽऽस्ते करुणा कटाक्षलहरो जीवेषु भक्तेषु वै
यश्चक्रे च करोति मुग्धजनताया मोहभङ्गं सदा ।
विज्ञत्वं खलु यस्य सर्वविदितं सौम्यत्वमप्यद्भुतं
सोऽयं विज्ञवरः सदा विजयते रामप्रतापोद्भवः ॥११॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, रसिकविहारिणं सर्वशास्त्रज्ञम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥१४॥

"भक्तिप्रियो वल्लभः" इति समस्यापूर्तिः

पूर्तिकालः वि० सं० २०३६

श्रीमल्लक्ष्मणभट्टसूरि-तनयो यो वह्निरूपाऽन्तरः
काष्ठाद् वह्निरिव स्वयं प्रकटितो योऽयोनिजःश्रूयते ।
भक्तिं यश्च तनान विश्वविदितः श्रीनाथपादाश्रितः
सोऽयं विज्ञवरः सदा विजयते भक्तिप्रियो वल्लभः ॥१॥

श्रीमद्भावतेन सार्धमपि यः प्रस्थानतुर्यं व्यधात्
टीकां यश्च सुबोधिनीं सुविदितां ग्रन्थान् बहून् भक्तिदान् ।
भाष्यं यश्च हि ब्रह्मसूत्रनिचये नाम्नाऽणुकं ज्ञानदं
सोऽयं विज्ञवरःसदा विजयते भक्तिप्रियो वल्लभः ॥२॥

शुद्धाद्वैतमत-प्रचारणपरः श्रीविष्णुमार्गे रतः
शिष्यान् यश्च चकार विश्वविदितान् श्रीसूरदासादिकान् ।
तीर्थोद्धारपरश्च यो व्रजभुवः पारिक्रमं चाप्यधात्
सोऽयं विज्ञवरःसदा विजयते भक्तिप्रियो वल्लभः ॥३॥

रासारम्भमथाऽकरोन्मधुपुरे यो माथुरैर्बालकै
रासं तेऽपि विधाय चाऽन्तरदधुः श्रीयामुने वारिणि ।
चातुर्वेद-सुविप्र-याचन-वशाद् योऽदर्शयत् तान् पुनः
योऽयं विज्ञवरः सदा विजयते भक्तिप्रियो वल्लभः ॥४॥

द्वापञ्चाशदिकश्च भावविपुलां प्राचार्य भक्तिं भुवि
काश्यामेव तिरोऽदधात् सतनुको गाङ्गे जले निर्मले ।
कीर्तिं यस्य तु कोऽपि नैव सकलां वक्तुं क्षमो मानवः
सोऽयं विज्ञवरः सदा विजयते भक्तिप्रियो वल्लभः ॥५॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीलश्रीवल्लभाचार्यम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥६॥

श्रीराधा-कृष्ण-विवाह-पद्धति-सम्मतिः

निर्माणकालः वि० सं० २०३६

मिश्रेत्युपाधियुक्ते सनाढ्यकुलमौलिना ।
कर्मकाण्डस्य सूर्येण याज्ञिकानां सुधांशुना ॥१॥
भोलानाथस्य पौत्रेण शिवलालस्य सूनुना ।
लिखिता गिरिराजेन श्रीवृन्दावनवासिना ॥२॥

चतुर्णां वेदानां भवति किल यत् स्वस्तिवचनं
तदस्यामेवाऽऽस्ते विवहनमयी पद्धतिरियम् ।
मुदा वृन्दारण्ये विबुधगिरिराजेन लिखिता
ततः सर्वैर्ग्राह्या निजनिजसमाधानविधये ॥३॥

प्रकाशने जाततरा अशुद्धी-, रुपेक्ष्य संशोध्य विलोकनीया ।
एषा शुभा पद्धतिरेवमाह, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥४॥

"रङ्गनाथोत्सवः" इति समस्यापूर्तिः

निर्माणकाल : वि० सं० २०३६

वेदत्रयी-पण्डित-मण्डितेयं, सभा विचित्रा सरसा विभाति ।
सभापतित्वं च सुशोभयन्ति, अण्णङ्गराचार्य-महानुभावाः ॥१॥
श्रीरङ्गनाथस्य महोत्सवेऽस्मिन्, समागता ये तु महानुभावाः ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ॥२॥

यं द्रष्टुं बहवो जनाः परिकरैरायान्ति दिग्भ्यःसदा ।
दृष्ट्वाऽऽनन्दपुरःसरं सनमनं नृत्यन्ति गायन्ति च ॥
हर्षोल्लास-परम्परा-परिचितः सद्वैष्णवैः संस्तुतः ।
सोऽयं श्रीविपिने सदा विजयते श्रीरङ्गनाथोत्सवः ॥३॥

यत्र स्यन्दन-मेलनं प्रतिसमं संजायते श्रीहरेः ।
सौवर्णादिक-वाहनैरतितरां शोभा विचित्रा भवेत् ॥
गोष्ठीभिर्विदुषामनेक-विषये शास्त्रार्थ-संचारणैः ।
सोऽयं श्रीविपिने सदा विजयते श्रीरङ्गनाथोत्सवः ॥४॥

श्रीरङ्गादिक-देशिका बुधवरा यस्याऽऽदिमाश्चालकाः ।
श्रीमद्बालकस्वामिनोऽपि सरला विद्वत्तमा आसते ॥
येषां प्रेरणयाऽधुनाऽपि सकला संचाल्यते प्रक्रिया ।
सोऽयं श्रीविपिने सदा विजयते श्रीरङ्गनाथोत्सवः । ५॥
राधाकृष्णवणिग्वरस्य च तथा श्रीलक्ष्मिचन्द्रस्य च ।
द्रव्येणैव विनिर्मितं सुविपुलं यन्मन्दिरं सुन्दरम् ॥
ख्यातिश्चोत्तरभारतेऽपि विपुला यस्यैव नाम्ना बुधाः ।
सोऽयं श्रीविपिने सदा विजयते श्रीरङ्गनाथोत्सवः ॥६॥
अभिनन्दति रतिपूर्वं, सर्वानत्राऽऽगतान् विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥७॥

उत्तरप्रदेश-संस्कृत-अकादमी द्वारा समायोजिते श्रीवृन्दावनान्तर्गत आनन्दवृन्दावने जायमाने श्रीमद्भागवत-संगोष्ठी-महोत्सवे समवेतानां सर्वेषां महानुभावानां

स्वागताभिनन्दनम्

वि० सं० २०३६

श्रीमद्भागवतं नौमि समस्तरस-बृंहितम् ।
स्वेच्छानुसारं स्वेष्टो हि रसो यत्र निपीयते ॥१॥
अखण्डानन्दपूर्णो मेऽखण्डानन्दसरस्वती ।
विराजतेतरां यस्य वाचि नित्यं सरस्वती ॥२॥
स जयति बदरीनाथो, बदरीनाथ इव सर्वसम्पूज्यः ।
कुलपतिरतिशय-विदितो, विदितःशास्त्रार्थसारनिचयेषु ॥३॥
स जयति रासविहारी, गोस्वामी शास्त्र-मर्मज्ञः ।
यस्य दयालवबलतो, बललवहीनोऽप्यहं सबलः ॥४॥
स विश्वनाथो जयतीह विश्व-विराजिनी राजति यस्य भाषा ।
वृन्दावने लब्धमहोदयोऽपि, विराजते सम्प्रति लक्ष्मणे पुरे ॥५॥
स जयति रामादर्शो, राम इवाऽऽदर्श आचारे ।
यो वृन्दावनमध्ये, प्राचार्यो रङ्ग आदर्शो ॥६॥

विदुषी केरलवासिनी, विनम्रा प्रेमलताऽऽह्वया जयति ।
या सङ्गीते दक्षा, दक्षा भक्ति-प्रवचनेऽपि ।।७।।

विद्यानिवासो जयतीह यस्मिन्, विद्याः समस्ता निवसन्ति यस्मिन् ।
तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः, पयो यथा गोषु भुवीव चान्नम् ।।८।।

श्रीवासुदेवः खलु कृष्णचन्द्रः, विद्यानिवासश्च हि मिश्रवर्यः ।
द्वौ यत्र संयोजकतां प्रयातौ, न तत्र किंचित् परिहास्यते भोः ।।९।।

नानादेशभुवां नृणां भुवि यथा दिल्यां हि सम्मेलनं
श्रीमद्‌भागवते समस्त-निगमार्थानां हि सम्मेलन ।
सर्वेषां पयसां समुद्रसलिले यद्वद्धि सम्मेलनं
तद्वत् सत्प्रतिभाजुषां हि विदुषामद्याऽस्ति सम्मेलनम् ।।१०।।

वाराणसीतस्तु समागता ये, समागता ये च प्रयागराजात् ।
ये वाऽऽगरातश्च समागताःस्यु, समागता ये च तथेन्द्रप्रस्थात् ।।११।।

समागता ये मथुरापुरीतो, वृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्यः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।१२।।

येषामहं वेद्मि न नामधेयं, न रूपधेयं न च भागधेयम् ।
समागता येऽत्र महानुभावाः, सर्वानहं तानपि पूजयामि ।।१३।।

अभिनन्दति रतिपूर्वं, सर्वानत्राऽऽगतान् विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।१४।।

श्रीसूर्यदेव-नमस्कारः । वि० सं० २०३५

दुर्योधनेनैव दुरोदरेण, निर्वासितायैव युधिष्ठिराय ।
पात्रं प्रदत्तं भुवनोपभोज्यं, तस्मै नमः सूर्यमहोदयाय ।।१।।

'निष्कामकर्मयोग-प्रशंसा' वि० सं० २०३६ कार्तिक शुक्ला पंचमी

निष्कामःकर्मयोगो भवति हि भगवत्प्रीति-सम्प्राप्ति-योग्यो
निष्कामः कर्मयोगो जनन-मरणजं बन्धनं नो करोति ।
निष्कामे कर्मयोगे जनक-प्रभृतयो भूभुजोऽतः प्रवृत्ता-
स्तस्मान्निष्कापूर्वः प्रसरतु नितरां कर्मयोगाङ्क एषः ।।१।।

अष्टोत्तरशतश्रीभागवत-पारायणे प्रोक्ता कविता

निर्माणकालः वि० सं० २०३७ अधिक ज्येष्ठ

स जयति नरहरिदासो, मूर्तिस्त्यागस्य वीतरागश्च ।
यस्योद्यम-वशवर्ती, महोत्सवोऽयं शुभो मुहुश्चलति ।।१।।
स जयति चैनविहारी, नरहरिदासेन सेवित सततम् ।
यस्य दयालव-बलतः, सर्वे बलिनो भवन्ति सन्मार्गे ।।२।।
यस्य पिता शिवकरणो, माता गोदावरी धन्या ।
स जयति भोलारामः, श्रीजाखोदिया-वंश-सदवतंसः ।।३।।
पत्नी यस्य सदा पतिव्रतपरा सौम्याऽऽकृतिःसत्कृतिः
साधु-ब्राह्मण-सेवनेऽतिनिपुणा नाम्ना सितारा मता ।
पुत्रौ यस्य गुरुप्रसाद-जनितौ योगेश-कृष्णौ मतौ
भोलारामवणिग्वरः स जयतादौदार्यमूर्तिः सदा ।।४।।

श्रीवेङ्कटेशचरिते सम्मतिः

निर्माणकालः वि० सं० २०३७ आषाढ शु० एकादशी

राधाकृष्णवणिग्वरस्य च तथा श्रीलक्ष्मिचन्द्रस्य च
द्रव्येणैव विनिर्मितं सुविपुलं यन्मन्दिरं सुन्दरम् ।
ख्यातिश्चोत्तरभारतेऽपि विपुला यस्यैव नाम्ना मता
वन्दे तं परमेश्वरं प्रतिदिनं श्रीरङ्गनाथं हरिम् ।।१।।
श्रीगोदारङ्गनाथः स जयति नितरां भक्तवश्यः सदैव
श्रीरङ्गाचार्यवर्यः प्रकटितमकरोद् यस्य सद्दिव्यदेशम् ।
रङ्गाचार्यद्वितीयो मठपतिरभवद् दिव्यगोवर्धनाख्य-
स्तस्यैवाऽधीनशिष्यो लघुमतिरतनोद् वेङ्कटेशस्य वृत्तम् ।।२।।
मिश्रो युगलकिशोरः, पुत्रःश्रीगोपालप्रसादस्य ।
रङ्गमन्दिर - पुरोधाश्चरितमलिखद् वेङ्कटेशस्य ।।३।।
यत्प्रेरणालवबलेन विटंकितं भोः, दिव्यं बुधा ! नरगिरा सकलप्रगेयम् ।
तस्मै समर्प्यत इदं चरितं तदीयं, श्रीवेङ्कटेशहरयेऽस्तु तदीय-प्रीत्यै ।।४।।

श्रीचक्रपाणिशरण–स्तुतिः

निर्माणकालः वि० सं० २०३६

लेभे जन्म सुरार्चितं द्विजकुले नेपाल-देशे शुभे
माता यस्य तु सच्चरित्र-जननी राधाऽभिधा शोभना ।
औपाध्याय-पदेऽभिषिक्त-जनको विष्णुप्रसादाऽऽह्वय-
स्तं श्रीमद्गुरु-चक्रपाणिशरणं नित्यं भजामो वयम् ॥१॥
रामाऽङ्ग-ग्रह-काश्यपी-परिमिते श्रीवैक्रमाब्दे शुभे
श्रीवैकुण्ठ-चतुर्दशी-तिथिवरे पक्षे सिते कार्तिके ।
'लामेडाँड़' इति प्रसिद्धनगरे श्रीरेवतीभेऽभवद्
यस्तं श्रीगुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं नमामो वयम् ॥२॥
कौमारे द्विजसंस्कृतिं च समगाद् यज्ञोपवीतादिना
पौगण्डे समधीतिमेत्य नितरां शास्त्रप्रवेशात्मिकाम् ।
त्यक्त्वा गेहमुपाययौ हरिमना भावेन वृन्दावनं
यस्तं श्रीगुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं स्मरामो वयम् ॥३॥
श्रीवृन्दावनमेत्य वृत्तिमदधाद् वैराग्य-भावात्मिकां
स्नात्वा प्राग् रजसि व्रजस्य तदनु श्रीयामुने वारिणि ।
दृष्ट्वा श्रीलविहारिणं मुदमगात् स्तुत्यादिभिः प्रीणयन्
यस्तं श्रीगुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं भजामो वयम् ॥४॥

ग्रहीतुं वैष्णवीं दीक्षां चेत आकुलितं भृशम् ।
श्रीमद्भागवतं श्रुत्वा पठित्वा च विशेषतः ॥५॥
विशेष-विदुषः पश्चात् श्रीनिम्बार्कपथानुगात् ।
गृहीता वैष्णवी दीक्षा विधिपूर्वकमादरात् ॥६॥
श्रीरामचन्द्रदासाख्या येषामासीत् पुरा प्रथा ।
तेऽपि मे गुरवो वन्द्या राम-कृष्णैक्य-शंसकाः ॥७॥
सर्वशास्त्रेषु निष्णाता हंस-वंश-प्रशंसकाः ।
संशयच्छेदने दक्षा श्रीनिम्बार्कपथानुगाः ॥८॥

आचार्या हि हरिप्रियाशरणकाः सौम्य-स्वभावा मताः
यस्य श्रीवृषभानुजाचरणयोः श्रीनन्दसूनोस्तथा।
आसीत् प्रेम परम्परा-परिचितं भावानुसारं वरं
तं श्रीमद्गुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं भजामो वयम् ॥९॥

श्रीमद्भागवतादि-शास्त्रनिवहे श्रीवैष्णवैः सम्मते
वाणीग्रन्थचये व्रजस्य रजसि श्रीयामुने वारिणि।
निष्ठाऽपूर्वतरा सदैव ववृधे ह्येकादशीजे व्रते
यस्य श्रीगुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं भजामो वयम् ॥१०॥

यस्य श्रीलगुरौ तथा गिरिवरे गोवर्धने कृष्णवद्
आसीद् भाव उदारता जनगणे श्रीवैष्णवै बन्धुवत्।
नाम्नि श्रीहरिवत् प्रसाद-निवहे सद्ब्रह्मवद् भावना
तं श्रीमद्गुरुचक्रपाणिशरणं नित्यं भजामो वयम् ॥११॥

श्रीराधिकादास इति प्रसिद्धः, शिष्यस्तु यस्याऽभवदात्मनिष्ठः।
यो ज्ञान-वैराग्य-सुभक्तिलीनः, कस्तत्स्वरूपं विबुधोऽपि वेद ॥१२॥

यद्भाषणं मृदुपदं सुहृदां जनानां, दुःखी भवत्यतितरां स्मरतां हि चेतः।
यो भाव-पद्धतिमुवाच निजाऽन्तरङ्गे, तं चक्रपाणिशरणं सुहृदं प्रपद्ये ॥१३

सप्ताग्नि-शून्य-कर-सम्मित-विक्रमाब्दे,एकादशीदिन उताऽऽश्विन-शुक्लपक्षे।
श्रीराधिका-हरि-निकुञ्जमवाप हर्षात् तं चक्रपाणिशरणं शरणं प्रपद्ये ॥१४

वृन्दावने हरिरवाप्य निकुञ्जमाप्तां, स्वां सेविकां सहमुदं यमुनाप्रियाख्याम्।
स्वीकृत्य तां मिलनपूर्वमथाऽऽयुयोज, तन्नित्य-सिद्ध-यमुनाजल-सेविकायाम् ॥

श्रीचक्रपाणिशरण-स्तुतिमात्महर्षात्, तच्छिष्य-सेवक-चतुर्भुजदास-तर्षात्।
वृन्दाटवी-वसति-लब्ध-कवित्वशक्तिः-प्रादुश्चकार समुदं वनमालिदासः ॥१६

चतुरशीतिक्रोशात्मकस्य व्रजमण्डलस्य परिक्रमान्ते श्रीवृन्दावने
दीयमानं श्रीमद्वल्लभसम्प्रदायाचार्याणां श्रीमाथुरचतुर्वेदानां
श्रीविष्णुदत्तात्मजानां श्रीविठ्ठलेश-महोदयानां

अभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकाल : वि० सं० २०३७ मार्गशीर्ष पूर्णिमा

श्रीविठ्ठलेशेन नियोजितेऽस्मिन्, महोत्सवे सद्विदुषां समाजे ।
व्रजप्रदेशस्य प्रदक्षिणायां, प्रदक्षिणीकृत्य समागतेन ।।१।।
समागता ये मथुरापुरीतो, वृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ।
ये वाऽन्यतश्चैव समागताः स्युः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।२।।
प्रदक्षिणीकृत्य व्रजप्रदेशं, समागता ते तु समं समन्तात् ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य-, स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ।।३।।
नानादेशभुवां नृणां भुवि यथा दिल्ल्यां हि सम्मेलनं
श्रीमद्भागवते समस्तनिगमार्थानां हि सम्मेललनम् ।
सर्वेषां पयसां समुद्रसलिले यद्वद्धि सम्मेलनं
तद्वत् सत्प्रतिभाजुषां हि विदुषामत्रास्ति सम्मेलनम् ।।४।।
श्रीविष्णुना साधु समर्पितायां, श्रीवल्लभाचार्य-सुसंस्कृतायाम् ।
तत्सम्प्रदायस्य सुवाटिकायां, विराजते सम्प्रति विठ्ठलेशः ।।५।।
श्रीमद्वल्लभभट्टपद्धतिमिमां यः संस्करोत्यद्भुतां
श्रीमद्वल्लभभाष्य-सन्ततिमलं जानाति विद्वत्तया ।
अन्यान् बोधयति स्वशिष्य-निवहान् सम्यक्तया भावतः
स श्रीविज्ञवरः सदा विजयते श्रीविठ्ठलेशः कृती ।।६।।
चातुर्वेद-सुवंशजान् निजजनान् स्वीये प्रबन्धे स्थितान्
सौख्ये स्थापयितुं स्वयं निजसुखं हित्वापि शारीरकमम् ।
कष्टं सोढुमयं परिक्रमणजं यद्यप्यनर्हः कृती
माधुर्यात् तदपि स्वयं प्रथयते यौधिष्ठिरीं प्रक्रियाम् ।।७।।
परिक्रमणमेव भो ! चतुरशीति-क्रोशात्मकं
व्रजस्य भवति प्रियं सकलतीर्थ-पुण्यप्रदम् ।

करोति हि प्रदक्षिणं व्रजभुवं जनो यो मुदा
न याति स हि योनिषु चतुरशीतिलक्षात्मसु ।।८।।
भवता तु कृता प्रदक्षिणा, समुदं माथुरगोपिका-जनैः ।
अनया ननु विठ्लेश भोः, स्वकुले कीर्तिकुलं प्रसारितम् ।।९।।
श्रीरज्जूजीमहाराज-,योगिराजादनन्तरम् ।
पीठस्थो ह्यभवद् धीमान्, विष्णुदत्तो महायशाः ।।१०।।
तदात्मजवरस्ततो भवति तत्र पीठाधिपः
स एव तु धिनोति नः सदसि विट्ठलेशः सुधीः ।
तदीयचरितं सितं भवति कस्य नो हृत्सितं
यदीयमवलोकनं भवति सन्मनो-लोभनम् ।।११।।
सरलता-वनिता मनसि स्थिता, व्रजति या न कदापि कठोरताम् ।
मधुरमूर्तिरयं सकलाञ्जनान्, वशयतिस्म ततः कठिनानपि ।।१२।।
अभिनन्दति रतिपूर्वं, विष्णुदत्तात्मजं श्रीविठ्ठलेशम् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।१३।।

शुभसम्मतिः वि० सं० २०३७

श्रीरामेश्वरदत्तशर्मलिखितं वृत्तं तु यत्संस्कृतं
सर्वेषां प्रतिभाजुषां हि विदुषां श्रीहारियाणाभुवाम् ।
तद् दृष्टं वनमालिदासकविना श्रीभारत-ख्यातिना
वासग्रामविभूतिना शमधुना वृन्दावने वासिना ।।१।।
श्रीरामेश्वरदत्तो, हरियाणा-संस्कृतं वृत्तम्
व्यलिखत् सुचिरं रुचिरं, पठनीयं सर्वदेशस्थैः ।।२।।
भाषायामपि व्यलिखद्, भाषावेत्तुर्जनस्य कृते
सर्वेषामुपकारो, यथास्यादितिसुविचारधिया ।।३।।
इतिमयाप्यनुभूय विलिख्यते, कृतिरियं न मुधैव प्रशस्यते ।
इतिविचार्य विचारचणा जना, अपि पठन्तु रमेश्वर-भावितम् ।।४।।
इदं सुवृत्तं हरियानजातं, विलोकयामास समं समन्तात् ।
संशोधयामास च सर्वमेव, महाकविःश्रीवनमालिदासः ।।५।।

श्रीमध्यप्रदेशमुख्यमन्त्रिणे दीर्घजीविने राजाधिराज-श्रीअर्जुनसिंहनामिने शुभाशीर्वाद–पत्रम् निर्माणकालः वि० सं० २०३७

मध्य-प्रदेशस्य हि मुख्यमन्त्री, श्रीअर्जुनो नाम सुवीरसिंहः।
चिरं स जीयात् सुयशाः सुचेता, यावद् धरा चन्द्रदिवाकरौ च ॥१॥

एकादशाक्षौहिणिकं बलं पुरा, यथा पराजित्य स पाण्डुनन्दनः।
रराज राज्ये निजशौर्य-संयते, तथा भवानद्य विराजतेतराम् ॥२॥

अर्जुनस्य यथाः कीर्तिर्महाभारत-मध्यगा।
विपक्षच्छेद-दक्षस्य भवतोऽपि तथा नृप ! ॥३॥

विपक्ष-पक्ष-छेदको यथार्जुनोऽभवत् पुरा।
स्वपक्ष-रक्षण-क्षमस्तथाऽद्य भो भवानपि।
सुभारतेतिहासके यथा यशस्तदीयकम्
सुवर्णवर्ण–सञ्चितं तथा तवाऽपि वर्तते ॥४॥

अर्जुनेन यथा ख्यातिं गमितं हस्तिनापुरम्।
रीमान्तर्भवता तद्वच्चुर्हट-सीधिकाभिधम् ॥५॥

रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः।
दाता कर्ण इव श्रीमान् दयी जीमूतवाहनः ॥६॥

उदासीनो जन्मावधि भवरसाद् भक्तिमधुरो
वदान्यो मान्यो वा शिविसम उताहो वलिरिव।
अमानी मानेनाऽपरजनगणं मानयति यः
सतां सेवालीनः स हि मम नरेशो विजयताम् ॥७॥

पूर्वजानां यशोरूप-ध्वजदण्डसमो भवान्।
कीर्तिस्तवसुविख्याता पितृभक्तिमतामिव ॥८॥

न याचकाः कौ विमुखाः प्रयाता, कदापि ते वंशपरम्परेयम्।
सुपालयंस्तामपि भो भवान् स्वां, विराजतामत्र हि मुख्यमन्त्री ॥९॥

निर्वाहयन् क्षात्रधर्मं कुर्वन् भो देशरक्षिकाम्।
पृथिव्यां कल्पवृक्षः सन् चिरमेव विराजताम् ॥१०॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, मध्य-प्रदेशस्य मन्त्रिणं मुख्यम्।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री, वनमालिदासाख्यः ॥११॥

श्रीस्वामि-गङ्गेश्वरानन्दाऽभिनन्दनम् ।

निर्माणकाल : वि० सं० २०३७

स जयति श्रौतमुनीति, विख्यातःस्वाश्रमो जगति ।
यस्य प्राङ्गणमध्ये, नृत्यति श्रौतःसुसिद्धान्तः ॥१॥

गङ्गेश्वरानन्दमहोदया इमे, वेदान्त-सिद्धान्त-नितान्त-पारगाः ।
एषां सुसौजन्य-बलेन शोभते, श्रीवेदमूर्तेरधिका प्रतिष्ठा ॥२॥

एषां समक्षे किमु वक्तुमीशो, भवामि चात्यन्त-सुमन्दबुद्धिः ।
तथापि सौशील्यमहो अमीषां, वक्तुं मुदा मां मुखरीकरोति ॥३॥

सप्ताग्नि-नन्द-विधु-सम्मितविक्रमाब्दे, स्वानन्दपूर्ण इव योऽवततार भूमौ ।
धर्मं सनातनमथाऽवति सर्वकालं, गङ्गेश्वरःस जयताद् विदितो महात्मा ॥४॥

वेदान्तवेद्य इव यः खलु वेदवेत्ता, श्रौतं मुनिं च मनुते तनुतेऽपि लोके ।
वेदं च वेदयति गूढरहस्य-पूर्वं, गङ्गेश्वरः स जयताद् विदितो महात्मा ॥५॥

सप्ताग्नि-नन्द-विधु-सम्मितविक्रमाब्दे, गङ्गेश्वरा गुरुवरा भुवि प्रादुरासन् ।
सप्ताग्नि-शून्य-कर-सम्मितविक्रमाब्दे, पूर्णायुषो निजमहोत्सवमर्चयन्ति ॥६॥

गङ्गेश्वरानन्द-महोदया इमे, पूर्णायुषः पूर्णमहोत्सवेऽस्मिन् ।
लोकोत्तरं दर्शनमर्पयन्तो, विराजमानाः सुखयन्ति सर्वान् ॥७॥

अलंकुर्वन्तः श्रीचरणकमलैर्भारतभूवं
विराजन्तामेते परमपि परं वत्सरशतम् ।
इतीवाऽस्माकं सन्मनसि सततं तर्षशतकं
विलासं संकुर्वन् नट इव मुदा नृत्यतितराम् ॥८॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं, श्रीयुत-गङ्गेश्वरानन्दान् ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥९॥

श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्ये शुभसम्मितिः

निर्माणकालः वि० सं० २०३७

श्रीकृष्णो वासुदेवः स जयति निररां डाक्टरोपाधियुक्तः
सप्ताचार्याख्यया च प्रथितशुभयशा भारते भारतेस्मिन् ।

सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरि चेतो मदीयं
काव्यं येन प्रणीतं तदपि विजयते द्वारकाधीशसंज्ञम् ॥१॥

श्रीवासुदेवकृष्णः, कृतवान् यदिदं महाकाव्यम् ।
तेनाऽस्यापि सुगणनं, स्यादेव द्राङ् महाकविषु ॥२॥

श्रीद्वारकाधीश-नवीन–काव्ये, बहूनि वृत्तानि पुरातनानि ।
दोहादि-वृत्तानि नवानि चात्र, शोभामनल्पां प्रतिपादयन्ति ॥३॥

काव्येऽस्मिन् रमणीये, भवन्ति यानि महाकाव्यचिन्हानि ।
विलसन्ति तानि समानि, तेनेदं भो ! महाकाव्यम् ॥४॥

श्रीवासुदेवस्य सुशोभना कृतिः, कृती जनो यां सकलः प्रशंसति ।
सैषा सदा मोदवहा मनस्विनां, मनःसु भूयाद् हरिभक्तिमिच्छताम् ॥५॥

इति ममाऽप्यनुभूय विलिख्यते, कृतिरियं न मुधैत्र प्रशस्यते ।
इति विचार्य विचारचणा जना, अपि पठन्तु सुकृष्ण-सुभाषितम् ॥६॥

श्रीद्वारकाधीश्वर-काब्यमेतद्, विलोकयामास समं समन्तात् ।
संशोधयामास च सर्वमेव, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥७॥

वैराग्य-मतिण्ड-ग्रन्थे शुभसम्मतिः वि० सं० २०३७

वैराग्य-मार्तण्डमहो विना नो, नश्येदिहाऽज्ञान-महान्धकारः ।
अतो जनैराश्रयणं विधेयं, वैराग्य-मार्तण्ड-महोदयस्य ॥१॥

यास्यन्ति दूरं सकला निशाटा, विज्ञान-सद्भक्ति-सुभक्षिका याः ।
दारैषणा चैत्र धनैषणा च, लोकैषणा इत्यभिधा-प्रसिद्धाः ॥२॥

वैराग्य-मार्तण्डमिमं विलोक्य, सद्भक्त-हृत्कञ्जमतिप्रसन्नम् ।
भविष्यतीतीरयतीह सत्यं, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥३॥

आत्मानन्देन महता, स्वात्मानन्द-प्रकाशकः ।
आत्मानन्दाय वैराग्य-मार्तण्डोऽयं निषेव्यताम् ॥४॥

संग्रहः शिष्टवाक्यानामात्मानन्देन साधुना ।
कृतो वैराग्य-मार्तण्डे सम्यक् सर्वैर्विलोक्यताम् ॥५॥

स्वतन्त्रानन्द-सत्कीर्ति-रात्मानन्देन साधुना ।
शिष्येणैव कृता कीर्ति-र्गुरोरेवं विराजते ॥६॥

श्रीओंकारानन्द ब्रह्मचारिणः प्रबन्धक-पदसमारोहण-समये

दीयमानमभिनन्दन-पत्रम्

निर्माणकाल :—वि० सं० २०३८ श्रीरामनवमी

समागता ये मथुरापुरीतो, वृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ।
ये वाऽन्यतश्चैव समागताः स्युः, सुस्वागतं सर्वजनस्य कुर्वे ।।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य-, स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ।।१।।
आनन्दवृन्दावनके सुवेशे, वृन्दावनस्यैव शुभप्रदेशे ।
मुक्तासरः सीम्नि विराजमाने, मानेन हीनेऽपि सुशोभमाने ।।२।।
श्रीभावभावेश्वर-मन्दिरं च, श्रीनृत्यगोपाल-सुमन्दिरं च ।
विराजते भाव-विभाव-युक्तं, सुशोभते सांस्कृतिकं च केन्द्रम् ।।३।।

आनन्द-वेदविद्यायाः केन्द्रं तन्द्रा-विवर्जितम् ।
अर्चितं धूपदीपाद्यैः पुण्यशालिभिरर्जितम् ।।४।।

गोशाला पाठशाला हवनविधिकृते होत्रशाला विशाला
अन्नक्षेत्रं च नित्यं चलति सुचलनं यत् सतां सेवनाय ।
पुष्पाणां वाटिका च हरि-हरपदयोः सेवनाय प्रफुल्ला
सेवा-कार्ये प्रवृत्ता अपि सहजतया सर्वं एव प्रसन्नाः ।।५।।

विचित्र आनन्दकुटीर आस्ते, यस्मिन् महान्तो निवसन्ति विज्ञाः ।
यत्रौषधस्यापि महान् प्रबन्धो, विराजते रोगनिवारणाय ।।६।।
सुपुस्तकानां भवनं विचित्रं, सुभक्ति-विज्ञान-विवर्धनाय ।
नवीनवृत्तान्त-विबोधकानां, पत्रादिकानामपि वाचनाय ।।७।।

अखण्डानन्दपूर्णो मेऽखण्डानन्दसरस्वती ।
विराजतेतरां यस्य वाचि नित्यं सरस्वती ।।८।।

यस्याऽऽचार-विचार-धारणपरा वाणी सदा निर्मला
भक्ति-ज्ञान-विराग-साधकतमा भावानुसारं नृणाम् ।
सोऽयं सम्प्रति सर्वसौख्यजनको दीनेषु यो वत्सलोऽ-
खण्डानन्दसरस्वती विजयतामानन्दवृन्दावने ।।९।।

यदीयं सौजन्यं सुखयतितरां सर्व-जनतां
यदीयं चारित्र्यं जनयतितरां सर्व-समताम् ।
यदीयं गाम्भीर्यं कलयतितरामम्बुधितुलां
अखण्डानन्दः सोऽर्पयतु कृपया प्रेमकणिकाम् ॥१०॥

ओंकारानन्दनामा स सयति नितरां ब्रह्मचारी विनम्रः
सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरि चेतो मदीयम् ।
यस्येवाऽयं प्रकृत्या सहजमधुरया जायते सत्प्रबन्धः
सर्वाऽऽनन्द-प्रदायी पुनरपि भविताऽऽनन्दवृन्दावनस्य ॥११॥

अभिनन्दति रतिपूर्वं सर्वानत्राऽऽगतान् सुजनान् ।
श्रीवृन्दावन-वासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ॥१२॥

कादम्बरीकथा-सारांशः

लेखन—समयः वि० सं० २०३७ माघकृष्णा द्वितीया

लेखकः—भारतसरकारद्वारा कालिदास-पुरस्कारेण पुरस्कृतः श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्यादिअनेककाव्यकर्ता—कहाकविः श्रीवनमालिदासशास्त्री श्रीवृन्दावनवास्तव्यः ।

कादम्बरी न केवलं वाणस्य अपि तु समस्तस्यैव संस्कृतसाहित्यस्य सर्वोत्कृष्टं गद्य-काव्यम् । अस्याः कथा कवि-कल्पिता । वाणेनेयं कथारूपेण कथिता । अस्या भागद्वयम् पूर्वोत्तर–भागनाम्ना प्रसिद्धम् । वाणेन तु पूर्व-भागस्यैव रचना कृता । ततस्तस्मिन् दिवं याते सति, उत्तरभागस्य रचना तु पुलिन्दभट्टनाम्ना भूषणभट्टनाम्ना वा तत्पुत्रेण कृता इति प्रसिद्धिः ।

कादम्बरी-प्रारम्भे तु कविना विंशतिसंख्येषु श्लोकेषु देवस्तुतिः गुरुदेववन्दना, खलनिन्दा, सज्जनप्रशंसा, निजवंशपरम्परा च वर्णिता । ततः कादम्बरीकथाया भूमिकारूपं कथामुखं प्रस्तुम् ।

कथामुखे परमप्रतापिनो राज्ञः शूद्रकस्याऽपूर्वं वर्णनं वर्तते, यस्य राज-धान्या नाम 'विदिशा' इति । एकदा एका चाण्डालकन्या पञ्जरे स्थितं वैशम्पायननामकं शुकमादाय शूद्रकस्य सभायामाजगाम । पञ्जरस्थःशुको

राज्ञः प्रशंसायां परमसुन्दरं आर्याछन्दः पपाठ। शुकस्य पाण्डित्येन प्रभावितो राजा निजपूर्वजन्मकथां श्रावयितुं शुकमाजग्राह।

ततो वैशम्पायन-नामा शुकः स्वकथामेवं प्रकारेण वर्णयामास—

अहं विन्ध्याटवीमध्ये वर्तमानस्य पम्पाभिधानस्य सरोवरस्य पश्चिमे तटे स्थितस्य शाल्मलीवृक्षस्योपरि निजपित्रा सह निवासमकरवम्। ममोत्पत्यनन्तरमेव मम माता मृता। एकदा एका शबर-सेना मृगयां कर्तुं तत्राऽऽजगाम। तत्सेनात एको वृद्धः शबरः पश्चादवशिष्टः। तेन च तस्मिन् शाल्मलीवृक्षे आरुह्य वृद्धस्य मम पितुः कण्ठं मोटयित्वा स नीचैः पातितः। तस्य पक्षेषु सम्पुटितोऽहमपि प्रापतं किन्तु सुष्कपर्णसमूहोपरि पतनाद् हेतोरङ्गानि ममः न त्रुटितानि। तमालवृक्षस्य मूले निलीनः सन् शबरस्य दृष्टेरप्युर्वरितः।

शबरे प्रयाते सति मां पिपासा बाधतेस्म। तदैव दैवयोगेन जावालिऋषिकुमारः स्नातुं पम्पामाजगाम। स मां जलं पाययित्वा स्वपितुराश्रममानयत्। तत्र जाबालिमहर्षिर्हसित्वा मामुवाच—शुक एष निजकर्मणामेव फलं भुंक्ते। तच्छ्रुत्वा ऋषीणां हृदि महत्कुतूहलमभूत्। त्रिकालज्ञेन महर्षिणा जाबालिना अन्यऋषीणामुत्सुकताशान्त्यर्थं शुकस्य तस्य पूर्वजन्मकथां श्रावयितुं वचोदत्तम्। कथामुखभागस्यात्र समाप्तिः।

जाबालिःशुकस्य पूर्वजन्मकथामेवं श्रावयति स्म—

उज्जयिनी-पुर्यां तारापीडनामा राजा बभूव। तस्य शुकनासनामा मन्त्री च। सन्ततेरभावेन राज्ञः पत्नी विलासवती विशेषदुःखिताऽऽसीत्। सा देवाराधनं चकार। ततो राज्ञा स्वप्ने विलासवतीमुखे प्रविशन् चन्द्रो दृष्टः। राज्ञा मन्त्रिणं प्रति स्वस्वप्नः श्रावितः। मन्त्रिणाऽपि स्वस्वप्नः कथितो यन्मया निजपत्न्या मनोरमाया क्रोडे केनचिद् दिव्यपुरुषेण निहितं पुण्डरीकमेकं दृष्टमिति। कियत्समयानन्तरं बिलासवत्या मनोरमया च पुत्रः समुदपादि। राजकुमारस्य नाम 'चन्द्रापीड' इति मन्त्रिपुत्रस्य च 'वैशम्पायन' इति नाम धृतम्।

चन्द्रापीड-वैशम्पायनयोः शैशवत एव गाढा मैत्री बभूव। अतः पठनार्थं द्वावपि सहैव विद्यालयं प्रेषितौ। तत्र ताभ्यां सर्वा अपि विद्या

अल्पीयसैव कालेनाऽधीता:। अध्ययनाऽनन्तरं द्वावप्याहूतौ विद्यालयात्, राज्ञा च राजकुमाराय 'इन्द्रायुधनामा' घोटक: पुरस्काररूपेणारोहणार्थं प्रेषित:।

नगर्यामागमनानन्तरं राज्ञ्या विलासवत्या 'पत्रलेखा'–नाम्नी कन्या सेवार्थं चन्द्रापीड–सविधे प्रहिता; चन्द्रापीडश्चैनां ताम्बूलकरंक–वाहनार्थं निजपार्श्वे रक्षतु इति अनुरुद्ध:। पत्रलेखा तु कुलूतराजस्य पुत्री आसीत्, या हि तद्राजधानीं पराजित्य आनीता।

राजा तारापीडो यदा चन्द्रापीडं युवराजं कर्तुमैच्छत्, तदा शुकनासो मन्त्री तं सारगर्भितेनैकेन उपदेशेन यौवन-सुलभान् दोषान् राजमदेनोत्पद्य-मानदुष्परिणामांश्च विज्ञापयामास। युवराजपदाधिकारानन्तरं चन्द्रापीड इन्द्रायुधनामके घोटके आरुह्य वैशम्पायनेन सार्धं बृहतीमेकां सेनामादाय दिग्विजयाय नि:ससार। दिग्विजयान्तरं चन्द्रापीड एकस्मिन् दिने एकल एव आखेटार्थं विनिर्गत: किन्नरयुगलमनुसरन् बहुदूरं आययौ, पिपासाऽपन-यनार्थं जलं गवेषयन् 'अच्छोद' नामक-सरसस्तीरमाजगाम। तत्र तस्य-शून्ये शिवमन्दिरे पूजां कुर्वाणया परमसुन्दर्या कन्यया सह सम्मेलनमजनि। चन्द्रा-पीडस्याऽनुरोधेन तया स्वात्मकथा श्राविता।

तया प्रोक्तं अहमस्मि महाश्वेतानामधेया हंसनाम्नो गन्धर्वस्यगौरी-नामिकाया अप्सरस:पुत्री। मया पुण्डरीकनामा कश्चन ऋषिकुमार आलो-कितस्तेन चाऽहं दृष्टा, द्वावप्यावां परस्परं प्रेमानुरक्तावभूव। पुण्डरीको महर्षे:श्वेतकेतो: पुत्र आसीत्। अहं तु स्नात्वैव निजगृहं प्रति परावृत्ता। पश्चात् पुण्डरीकस्य विरहावस्थां तत्सहचरात् कपिंजलकात् श्रुत्वा अहं तेन मिलितुं गता किन्तु मद्गमनात् पूर्वमेव पुण्डरीक: परलोकं प्रस्थित:। ततोऽहं यदा सहसा सतीभवितुं प्रवृत्ता तदैव दिव्य एक: पुरुष आकाशा-दवतीर्य मह्यमास्वासनमेतददात् यत् तव प्रियेण तव पुन: समागमोऽवश्यं भविता, पुण्डरीकस्य मृतं शरीरमाहाय आकाशमुदपतत्। तत्सहचर: कपिं-जलोऽपि तं दिव्यपुरुषं विरुद्धं ब्रुवन् तमेवाऽनुगच्छतिस्म। अहं तु तत आरभ्य निजप्रियतमसमागमंप्रतीक्षमाणा निजसख्या 'तरलिकया' सहात्रैव अच्छो-दसरस्तीरे निवसामि। महाश्वेताया आत्मकथाऽत्रैव समाप्ता भवति।

तत्र तरलिकामदृष्ट्वा चन्द्रापीडो महाश्वेतां पृच्छतिस्म, त्वां विहायाऽधुना क्व गता सा तव नित्यसहचरी 'तरलिका'? ततो महाश्वेतया प्रसंगवशतो निजसख्या: कादम्बर्या विषये स राजकुमार: (चन्द्रापीड:) प्रबोधित:। महाश्वेतया प्रोक्तं 'कादम्बरी' मम प्रियसखी वर्तते। तस्या मातुर्नाम 'मदिरा' इति पितुश्च नाम 'चित्ररथ' इति। कादम्बर्या एक:शपथ: कृतोऽस्ति,यदहं मम प्रियसख्या महाश्वेताया निजपतिना मिलनं न भविष्यति तावत्पर्यन्तं निजविवाह् न करिष्यामीति। एतत् सम्बन्धे निजसन्देशं ग्राहयित्वा सा तरलिका मया तत्सविधे प्रेषिता।

द्वितीयदिवसे सा तरलिका, कादम्बरी–वीणावाहकेन नाम्ना केयूरकेण सहागत्य सूचयतिस्म, सा कादम्बरी तु निजपूर्वनिश्चये दृढहठा, इति। ततो महाश्वेता स्वयमेव तां बोधयितुं चलति, महाश्वेताया आग्रहेण चन्द्रापीडोऽपितया सहैव चलतिस्म। चन्द्रापीडो कादम्बरी-प्रथमदर्शन एव परस्परं प्रेमकरोतिस्म। किन्तु तदानीमेव पितु:पत्रप्राप्ति-कारणात् चन्द्रापीडस्य उज्जयितीं प्रति परावर्तनं भवति। निजताम्बूल-करंकवाहिनीं चित्रलेखां तु कादम्बरीनिकट एव स्थापयित्वा वैशम्पायनं च सेनया सह परावर्तनमादिश्य स्वयं त्वरया राजधानीं प्रति प्रतस्थे। राजकुमारागमने सर्वेऽपि प्रसन्ना बभूवु:। कतिपयदिनान्ते पत्रलेखाप्यागत्य कादम्बरी-विरहावस्थां राजकुमाराग्रे वर्णयामास। कादम्बरी-पूर्वभागस्य कथात्रै व समाप्ता भवति।

उत्तर-कादम्बरी-प्रारम्भे पद्यै:प्रस्तावना वर्तते, पश्चात् कथा प्रारभ्यते। चन्द्रापीड: कादम्बरीनिकटत आगतात् केयूरकात् कादम्बरी-विरहावस्थां श्रुत्वा तां मिलितुं व्यग्रो भवति। तदैव च वैशम्पायनविषये सूचना मिलति यन्नजाने तस्य हृदि किं जातं यत आग्रहे कृतेऽपि अच्छोदसरोवरप्रदेशतो न परावृत्त:।

चन्द्रापीडो वैशम्पायनेन मिलितुं अच्छोद-सरोवरं प्रस्थितो भवति। तत्र वैशम्पायनो न मिलतिस्म। महाश्वेतात एव तद्विषये ज्ञातं भवति यद् वैशम्पायनस्तत्र आगत्य पूर्वपरिचित इव महाश्वेतात: प्रणयं याचते, परन्तु पुण्डरीकं प्रति अनन्यप्रेमयुक्तया महाश्वेतया स: 'शुकोभव' इतिशप्त:। मित्रस्य मृत्युं श्रुत्वैव चन्द्रापीडस्य हृदयं विदीर्णं भवति। कादम्बरी च

निजप्रियतमं मृतं दृष्ट्वा स्वयमपि मर्तुं मिच्छति, किन्तु तदैव आकाशवाणी भवतिस्म यत्–पुण्डरीकस्य शरीरं तु चन्द्रलोके सुरक्षिततं वर्तते, कादम्बर्या अपि स्वप्रियेण पुनः समागमोऽवश्यं भविता, तया तु चन्द्रापीडशरीरस्य रक्षा विधातव्या। पत्रलेखा च इन्द्रायुधनामकेन घोटकेन सह सहसाऽच्छोद-सरोवरे पतितस्म। तदैव तत्सरोवरात् कपिंजलःप्रकटो भवति।

अधुना कपिंजलः कथां प्रारभते—कपिंजलः पुण्डरीकस्य मृतशरीर-मादाय-उड्डीय गच्छतो दिव्यपुरुषस्य पृष्ठतोऽनुजगाम। दिव्यपुरुष सः चन्द्र एवाऽऽसीत्। मरणसमये पुण्डरीकश्चन्द्रमेवं शशाप—"त्वयाऽपि मत्तुल्या एव प्रियवियोगपीडाऽनुभवनीया भविष्यति" इति। प्रत्यपकारे चन्द्रेणापि पुण्डरीक एवं शप्तो यत् त्वमपि मत्समान एव दुःखभागी भविष्यतीति। चन्द्रमसः शापसमाप्तिपर्यन्तं पुण्डरीकस्य शरीरं सुरक्षणार्थं चन्द्रलोकं प्रापितमासीत्। एताः सूचना आदाय परावर्तमानेन कपिंजलेन एकस्य विमानचारिणो मार्ग उल्लंघितः, तत्कारणादेव वैमानिकेन स 'घोटको भवेति' शप्तः। अवकाशश्चैष दत्तो यत् स्वस्वामिनो मरणान्ते जले स्नाते सति शापान्मुक्तो भविष्यसीति। एतावदुक्त्वा कपिंजलः सर्वा घटना निज-पितरं महर्षि श्वेतकेतुं श्रावयितुं आकाशमार्गेण प्रस्थितः।

महर्षिजावालिरपि एतावदुक्त्वा निजकथां समापयन् कथयति—प्रथमं तु शुक एष कामासक्तिकारणात् शुकनास-पुत्र-वैशम्पायनस्य रूपेण प्रादुर्बभूव पश्चादपि निजभ्रष्टताकारणात् शुको बभूव। अधुना शुकोऽपि निजकथासूत्र-मग्रे वर्धयति—सम्प्रति पूर्वजन्मवार्ता मम स्मृतिपथमारूढाः सन्ति, मया 'चन्द्रापीडः क्वाऽधुना वर्तत'—इति पृष्टो जावालिराह—'यदा त्वं उड्डयनयोग्यो भविष्यसि तदा प्रष्टव्यमिति" तदानीमेव मत्पित्रा महर्षिणा श्वेतकेतुना कपिंजलद्वारा समाचार एष प्रेषितो—यत्त्वया शापान्तं यावत् जावालेराश्रम एव स्थातव्यम्" इति किन्तु कतिपय-दिनानन्तरं मम पक्षेषु दृढेषु जातेषु-अहं निजप्रेमिकया महाश्वेतया मिलितुमाकाशमुत्पतितः, मार्गे चाण्डालस्य हस्ते पतितः। चाण्डालेन चाहं निजकन्यायै दत्तः सा चैषा कतिपयदिनानि तत्र रक्षित्वा मामत्र आनीतवतीति। शुकद्वारा शूद्रकं प्रति कथिता कथात्र समाप्ता भवति।

श्रीमद्भागवतके 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' पर तात्त्विक विमर्श

(लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्रीजी महाराज)

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्याय में सभी अवतारों का सूत्ररूपसे वर्णन किया गया है। पश्चात् श्रीकृष्णको ही परिपूर्णतम एवं सर्वावतारी अर्थात् सभी अवतारोंका मूलतत्त्व बताते हुए अट्ठाईसवें श्लोकमें यह वाक्य आया है कि **'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** (श्रीमद्भा० १। ३। २८) अर्थात् ये सब अवतार तो भगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) ही हैं। श्रीकृष्ण ही सब अवतारोंके मूलतत्त्व हैं।

श्रीव्यास आदि मुनियोंने अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं। इनमें से छठा—परिपूर्णतम अवतार तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मरीचि आदि 'अंशांशावतार', ब्रह्मा आदि 'अंशावतार', परशुराम आदि 'आवेशावतार' और कपिल एवं कूर्म आदि 'कलावतार' कहे गये हैं। नृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण पूर्णावतार हैं, अर्थात् सर्वावतारी हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रभु श्रीगोलोकधाममें विराजते हैं जिनके अपने तेजमें सभी अवतारोंके तेज विलीन हो जाते हैं। भगवान्के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् 'परिपूर्णतम' बताते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ताको ज्ञानी भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीउद्धवजी ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भक्तवर्य श्रीविदुरके प्रति इस प्रकार बताते हैं—

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोटयेडितपादपीठः॥

(श्रीमद्भा० ३। २। २१)

'देखो विदुरजी! स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके अथवा वैकुण्ठलोकके ऊपर विराजमान अपने नित्यधाम-गोलोक, मथुरा, द्वारकारूप तीनों लोकोंके और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंके अधीश्वर हैं। अतः

जब उनके समान ही कोई नहीं है तब उनसे बढ़कर भी कोई कैसे हो सकता है। वे अपने स्वत:सिद्ध ऐश्वर्यसे, किंवा स्वरूपभूत परमानन्द शक्तिके प्रभावसे हो सर्वदा पूर्णकाम हैं और चिरकालजीवी ब्रह्मा आदि असंख्य लोकपालगण अनेक प्रकारकी भेंटें देकर अपने-अपने मुकटोंके अग्रभागसे उनके चरण रखने की चौकी को प्रणाम किया करते हैं।

इस श्लोकको विशिष्ट व्याख्या करते हुए श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने 'लघुभागवतामृत' में एक पौराणिकी प्रक्रिया दिखाकर यह कहा कि भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिमें अनेक प्रकारके अनन्त ब्रह्माण्ड विचित्र-रूपसे विराजमान हैं। इस ब्रह्माण्डका परिमाण तो केवल पचास करोड़ योजन ही बताया है, किंतु श्रीकृष्णकी विचित्रताके कारण कितने ही ब्रह्माण्ड सौ करोड़ योजनके हैं, कितने ही अरब-खरब योजनके तथा कितने ही सौ-सौ परार्द्धके परिमाणके विस्तारवाले हैं। यह ब्रह्माण्ड तो केवल चौदह भुवनोंवाला है, किन्तु अन्य ब्रह्माण्डोंमें तो किसीमें बीस भुवन हैं और किसीमें पचास, किसीमें सत्तर, किसीमें सौ, किसीमें हजार, किसीमें दस हजार तथा किसीमें लाख भुवन भी हैं। उन सभी ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मादि लोकपालगण भी अनेक प्रकार से विराजमान हैं। किसी-किसी ब्रह्माण्ड में इन्द्र आदि लोकपाल शतमहाकल्पजीवी हैं और ब्रह्मादि लोकपालगण परार्द्ध महाकल्पजीवी हैं। इस प्रकार वे ब्रह्मादि, इन्द्र आदि लोकपालगण ही 'चिरलोकपाल' कहे जाते हैं। उनके कोटि-कोटि मुकुटोंके द्वारा श्रीकृष्ण के पादपीठ की स्तुति यथावसर हुआ करती है।

उसका विवरण इस प्रकार है कि एक समय भगवान् 'श्रीकृष्ण द्वारकापुरीमें विराजमान थे। उसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि 'प्रभो! आपके श्रीचरणारविन्दों के दर्शन की अभिलाषा से ब्रह्माजी द्वारपर खड़े हैं।' 'उनसे पूछो कि कौनसे ब्रह्मा द्वारपर आये हैं'–भगवान्के इस वचन को सुनते ही द्वारपालने द्वारपर जाकर ब्रह्माजोसे पूछकर कहा कि 'प्रभो! सनकादिकोंके पिता चार मुखवाले ब्रह्मा हैं।' 'ले आओ'—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर द्वारपाल ब्रह्माको सभामें ले आया। ब्रह्माके दण्डवत्-प्रणाम

कर लेनेपर श्रीकृष्ण ने पूछा कि 'ब्रह्मन् ! आप आज किस कारण से आये हैं ?' ब्रह्मा बोले—'प्रभो ! आने का कारण तो पीछे निवेदन करूँगा, परन्तु नाथ ! आपने अभी जो प्रश्न किया कि 'कौन से ब्रह्मा आये हैं' बस पहले इसी रहस्य को जानना चाहता हूँ । कारण यह है कि मेरे अतिरिक्त कोई ब्रह्मा नहीं हैं ।'

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने कुछ मुस्कराकर सभी चिरलोकपालोंका स्मरण किया। तत्काल कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंसे लोकपालगण तीव्रवेग से द्वारका में आने लगे। उनमें आठ मुखवाले, सोलह मुखवाले, बत्तीस मुखवाले, चौसठ मुखवाले, सौ, हजार, लाख तथा करोड़ मुखवाले ब्रह्मा भी थे, और बीस, पचास, सौ हजार मुखवाले तथा लाख भुजावाले, लाख-लाख शिरोंवाले शंकर भी थे तथा लाख एवं दस लाख तक के नेत्रोंवाले इन्द्रगण थे। सभी अनेक आकारवाले एवं सभी अनेक प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। सभी चिरलोकपालगण, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के पादपीठ में प्रणत हो गये। उन सबको देखकर चार मुखवाले ब्रह्मा विस्मित होकर उन्मत्त हो गये।

ब्रह्मसंहिता में श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता इस प्रकार दिखायी है—

यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमबिलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो, गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।

प्रार्थना करते हुए ब्रह्मा कहते हैं कि 'मैं आदिपुरुष उन श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ, जिन गोविन्दके अभिन्न-स्वरूप महाविष्णुके एक श्वासके लेनेका समय अवलम्बन करके, जिनके (महाविष्णुके) रोमकूपोंमें विद्यमान अनन्त ब्राह्मण्डाधिपति जीवित बने रहते हैं, वे महाविष्णु भी जिन गोविन्द के कलाविशेष कहे जाते हैं।'

रामादिमूर्तिषु कला नियमेन तिष्ठन्, नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमःपुमान् यो, गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।।

'मैं, आदिपुरुष उन गोविन्द का भजन करता हूं जो श्रीकृष्ण-नामक परमपुरुष, अपनी कलाओं के नियम से अर्थात् शक्तियों के परिमित प्रकाशके द्वारा श्रीराम आदि मूर्तियों में स्थित होकर, भुवनोंमें अनेक अवतार धारण

करते रहते हैं; और वैवस्वत मन्वन्तर के इस अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही परिपूर्णतमरूपसे प्रकट हुए हैं', प्रमाण यथा—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश ?, भारं भुवो हर यदूत्तम ? वन्दनं ते ।।

(श्रीमद्भा० १०।२।४०)

भगवान् शंकर के अवतार श्रीशंकराचार्यजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता अपनी निराली परिपाटी से इस प्रकार प्रतिपादित की है—

ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च यः ।
शम्भुर्यच्चरेणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतःसच्चिन्मयोनीलिमा ।।

(प्रबोधसुधाकर—२४२)

जिन श्रीकृष्ण ने ब्रह्ममोहन-लीला में ब्रह्मा को अनेक ब्रह्माण्डों का दर्शन कराया एवं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अतिशय अद्भुत ब्रह्माओं का दर्शन कराया तथा सभी वत्सगणों से युक्त ग्वाल-बालों को भी विष्णुरूप से प्रदर्शित कर दिया और शंकर भी जिनके चरणोदकरूप गङ्गाजल को अपने सिरपर सादर धारण करते हैं, किन्तु सच्चिदानन्दमयी श्यामसुन्दरता की झाँकी वाले वे ही अनिर्वचनीय स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा, विष्णु महेशरूप तीनों मूर्तियों से पृथक् ही निर्विकाररूप से विराजमान हैं । तात्पर्य, श्रीकृष्ण दूसरे किसी की अपेक्षा नहीं करते हैं । **'अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयंरूपः स उच्यते'**; क्योंकि जिसका रूप दूसरे की अपेक्षा नहीं करता, वही स्वयं भगवान् कहलाता है । श्रीकृष्ण की परावस्था का प्रदर्शन करते हुए श्रीकृष्ण-कर्णामृतकार श्रीबिल्वमङ्गलजी ने भी कहा है कि—

सन्त्ववतारा बहवः, पुष्करनाभस्य सर्वतोभद्राः ।
कृष्णादन्यः को वा, लतास्वपि प्रेमदो भवति ।।

'पद्मनाभ भगवान् के सर्वतोभाव से मङ्गलमय बहुत-से अवतार हैं तो उन्हें रहने दो । परन्तु श्रीकृष्ण से भिन्न ऐसा कौन-सा अवतार हुआ है कि जो लताओं को भी प्रेम का प्रदान करने वाला है ?' यद्यपि—'अपि

ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' उत्तररामचरित की इस उक्ति के अनुसार, सीता-विरहाकुल श्रीरामजी की दशा को देखकर पत्थर भी रोते थे एवं वज्र का हृदय भी पिघल जाता था, तथापि वह तो उनके वियोग की दशा में हुआ था। किन्तु श्रीकृष्ण की तो यह विशेषता थी कि उनके संयोग में भी गोपगण, पक्षिगण एवं मृगगण भी रोमाञ्चित होते रहते थे; यथा—

'त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं, यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्।'
(श्रीमद्भा० १०।२९।४०)

'प्रणतभारविटपा मधुधाराः, प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म।'
(श्रीमद् भा० १०।३५।९)

निजनिर्मित—षट्सन्दर्भरूप मन्दराचल के द्वारा श्रीमद्भागवतरूप क्षीरसागर का मन्थन करके, श्रीकृष्णचन्द्र-रूप परिपूर्णतम चन्द्रमा को हस्तामलकवत् दिखाकर प्रेमी भक्तों के जीवनरूप श्रीजीवगोस्वामीजी ने 'तत्त्वसंदर्भ' के आदि में 'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता' के अनुसार साररूप से श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार प्रार्थना की है कि—

यस्य ब्रह्मेति संज्ञां क्वचिदपि निगमे याति चिन्मात्रसत्ताऽ-
प्यंशो यस्यांशकैः स्वैर्विभवति वशयन्नेव मायां पुमांश्च।
एकं यस्यैव रूपं विलसति परमे व्योम्नि नारायणाख्यं
स श्रीकृष्णो विधत्तां स्वयमिह भगवान् प्रेम तत्पादभाजाम्॥

'परात्परतत्त्वस्वरूप जिन श्रीकृष्ण की चित्स्वरूपा सत्ता अर्थात् श्री-अङ्ग की कान्ति ही 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वेद-विभाग में निर्विशेष ब्रह्म का नाम धारण कर लेती है, एवं कारणार्णवशायी सहस्रशीर्षापुरुष, जो कि अपने अंशस्वरूप मत्स्यादि अवतारों के द्वारा माया को वश में करके लीलावतारों को प्रकट करते रहते हैं, वे पुरुष भी जिन श्रीकृष्ण के अंश कहे जाते हैं, एवं जिनका नारायण-नामक एक (मुख्य) रूप, प्रकृति के पार वैकुण्ठ में विराजमान है, वे ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इस संसार में अपने चरण-कमल-सेवी भक्तों को अपना प्रेम सदैव अर्पण करते रहें।'

श्रीकृष्ण का साक्षात्कार करनेवाले श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी ने तो पूछने वाले अपने अन्तरङ्ग भक्तों से स्पष्ट कह दिया था कि – **'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'** अर्थात् श्रीकृष्ण से परे और कुछ भी तत्त्व है, इसे मैं नहीं जानता; और कहा कि—

प्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाहात्म्यमद्भुतम् ।
न शक्नुवन्ति ये सोढुं ते मूढा निरयं गताः ॥

'देखो भाइयो ! मैंने तो श्रीकृष्ण का अद्भुत माहात्म्य प्रमाणों के द्वारा निर्णीत कर दिया है । किन्तु इतने पर भी जो मूढ़ उसको नहीं सह सकते हैं, वे तो निकटवर्ती भविष्य में नरक में ही जाने वाले हैं ।'

शंका-समाधान

१–प्रश्न–यदि भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वावतारी अर्थात् सभी अवतारों के मूलतत्त्व माने जाते हैं तो फिर इनको अवतारों में गणना क्यों ?

उत्तर–उनकी अवतारों में गणना तो भूलोक में विद्यमान अपने गोकुल, वृन्दावन, मथुरा एवं द्वारका आदि धामों में विहार करने के कारण एवं लीलापुरुषोत्तम होने के कारण प्रपञ्च के लोकों में भक्तों पर अधिक करुणा प्रकट करने के कारण तथा आविर्भाव-तिरोभाव के कारण ही हैं । तात्पर्य यह कि ये श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् (सर्वावतारी) होकर भी अपने मूलस्वरूप में स्थित रहकर ही अपनी जन्मादि लीलाओं के द्वारा किसी लोकोत्तर माधुर्यको पुष्ट करते हुए निज परिजनवृन्दों के आनन्दविशेष को चमत्कृत करने के लिये कभी-कभी सभी लोगों के दृष्टिगोचर हो जाते हैं । 'प्रकृति के वैभव में अवतीर्ण होना ही अवतार कहा जाता है ।' अतएव गोपालतापिनी उपनिषद् में ब्रह्मा ने गोपालजी से पूछा है कि 'अवतारों के मध्य में आपका अतिशय श्रेष्ठ अवतार कौन होगा, जिससे मनुष्य एवं देवता आदि सभी प्रसन्न हो जायँगे ?' तो उत्तर में कहा–'श्रीकृष्ण ही होंगे ।' अतः अवतारों में भी गणना कर दी ।

२–प्रश्न–यदि श्रीकृष्ण ही परिपूर्णतम माने जाते हैं तो श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में **तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शं स नः**(श्रीमद्भा० १०।१।२), **अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ?**। (श्रीमद्भा० १०।२।६)

दिष्टचाम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः (श्रीमद्भा० १०।२।४१) इत्यादि स्थलोंपर श्रीकृष्ण को अंशावतार कहा है, इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर–श्रीमद्भागवत शास्त्र के आरम्भ में तीसरा अध्याय भगवान् के सभी अवतारों का सूचक होने के कारण जन्मगुह्याध्याय नाम से प्रसिद्ध है। उन वाक्यों में **'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** (१।३।२८) यह वाक्य तो परिभाषा-सूत्र है; इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ अंशावतार सुने जाते हैं उन अंशावतारों को कारणार्णवशायी पुरुष के अंशावतार समझना चाहिये; श्रीकृष्ण को तो स्वयं भगवान् (सर्वावतारी) ही मानना चाहिये। यह प्रतिज्ञारूप परिभाषा सूत्र सभी जगह उपस्थित हो जाता है। प्राचीन विद्वानों का कथन है कि दीपक जिस प्रकार घर के एक कोने में स्थित रहकर भी सम्पूर्ण घर को प्रकाशित कर देता है, ठीक उसी प्रकार परिभाषा शास्त्र के एक स्थान पर स्थित होकर भी सम्पूर्ण शास्त्र को प्रकाशित करती रहती है। वह भी शास्त्र-मात्र में एक बार ही पढ़ी जाती है, बार-बार नहीं। चक्रवर्ती राजा की तरह वह अकेली ही करोड़ों वाक्यों का शासन करती रहती है। इसके विरुद्ध प्रतीत होने वाले वाक्यों की व्याख्या इसके अनुकूल रहकर ही करनी चाहिये। विरोध का परिहार करने के लिये कूर्मपुराण में यह परिपाटी बतायी है—

विरोधो वाक्ययोर्यत्र नाऽप्रामाण्यं तदिष्यते।
यथाऽविरुद्धता च स्यात् तथार्थः कल्प्यते तयोः॥

'जिस शास्त्र में दो वाक्यों का परस्पर विरोध हो, वहाँ पर उसके अन्यतर वाक्य का अप्रामाण्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव ऐसे स्थान में जिस प्रकार दोनों वाक्यों का विरोध टछू जाय, ऐसे अर्थ की ही कल्पना करनी चाहिये।' अतः श्रीधरस्वामीजी ने अपनी टीका में पूर्वोक्त वाक्यों के अर्थ की कल्पना तत्तत्-स्थल पर समाधानपूर्वक की है, वह वहीं पर समझने योग्य है। किं च **'तत्रांशेनावतीर्णस्य'** इत्यादि वाक्य उस-उस प्रकरण में स्थित होने के कारण दुर्बल हैं और **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** यह वाक्य तो श्रुतिरूप होने के कारण प्रबल है। इस विषय में **'श्रुतिलिङ्ग-वाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्'**—यह न्याय ही प्रमाण है; अर्थात्—जहाँ पर 'श्रुति' एवं लिङ्ग-आदि का संघर्ष उपस्थित हो जाय वहाँ पर पूर्वपठित श्रुति आदि की अपेक्षा पर पठित लिङ्ग आदि क्रमशः दुर्बल कहे जाते हैं।

प्रश्न—ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ।।
(श्रीमद्भा० ४।१।५९)

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में तो इस प्रमाण के अनुसार श्रीकृष्ण को नारायण का अवतार एवं अर्जुन को नर का अवतार बताया है, अतः इस श्लोक के अर्थ की संगति किस प्रकार बैठेगी ?

उत्तर—इस श्लोक के अर्थ की संगति श्रीधरस्वामी के अभिप्रायानुसार श्रीरूपगोस्वामी ने अपने 'लघुभागवतामृत में इस प्रकार बतायी है—

कर्तारौ तु हरेरंशौ नरनारायणाविह ।
द्वापरान्ते कर्मभूतावागतौ कृष्णफाल्गुनौ ।।
(७।५)

तात्पर्य—नारायण और नर ने द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण और अर्जुन में प्रवेश किया । पूर्व श्लोक में कहे हुए श्रीशेषशायी हरि के अंश नर-नारायण को कर्ता समझना चाहिये और कृष्ण-अर्जुन को कर्मस्थानी । **'आगतौ'** यह क्रिया समझनी चाहिये । व्याकरण के ज्ञाता इसको भलीभाँति समझ जायँगे ।

प्रश्न—श्रीविष्णुपुराण में एवं महाभारत में तो श्रीकृष्ण को विष्णु के काले केश का तथा बलराम को उनके श्वेत केश का अवतार बताया है ? इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—भूमि का भार उतारने के लिये सभी देवताओं ने जब श्री-शेषशायी विष्णु भगवान् से अवतार लेने की प्रार्थना की तो उन्होंने अपने सफेद एवं काले केश उखाड़ते हुए यह भाव प्रदर्शित किया कि भूमि का भार उतारनारूप छोटा-सा कार्य तो मेरे बाल ही कर सकते हैं अथवा सफेद एवं काले वर्ण के केशों से बलराम एवं श्रीकृष्ण के रंग की सूचना दी है। वस्तुतस्तु भगवान् का श्रीविग्रह निर्विकार है तथा नित्य किशोर बताया है, अतः आधे केश पकना एवं उखाड़ना आदि सम्भव ही नहीं, यह लीला तो आसुरी प्रकृतिके जीवों को मोहित करने के लिये ही प्रतीत होती हैं ।

प्रश्न—द्वितीय स्कन्ध में सभी अवतारों का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी ने भी श्रीकृष्ण को आपाततः प्रतीत केश का अवतार कहते हुए **'कलया सितकृष्णकेशः'** (श्रीमद्भागवत २।७।२६)—ऐसा कहा है, इसका क्या समर्थन है ?

उत्तर–इसका समर्थन इस प्रकार का विग्रह करके किया जा सकता है–**'कलया शिल्पनैपुण्यविशेषविधिना'** अर्थात्—**'केश-ग्रथनचातुर्येण सिता बद्धाः कृष्णाः केशा येन'** यानी केश गूंथने की चतुराई से जिन्होंने अपने काले केश बाँधे हैं, वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं; कारण इनकी वेणी गूँथने की निपुणता, रास में श्रीप्रियाजी के वेणीग्रन्थन के समय प्रसिद्ध है; अथवा श्लेषपक्ष में इस प्रकार का विग्रह भी किया जा सकता है—**'सितः कर्पूर-गौरःशंकरः, कृष्णः=विष्णुः, क=ब्रह्मा तेषामीशो नियन्ता इत्यर्थः'** अर्थात् शिव-विष्णु-ब्रह्मा के नियन्ता वे ही श्रीकृष्ण, सित-कृष्ण-केश शब्द से कहे जाते हैं।

प्रश्न–क्योंजी! परमात्मा तो सच्चिदानन्दमय, व्यापक, अपरिच्छिन्न स्वरूपवाला कहा गया है और भाग-विभाग की कल्पना तो परिच्छिन्न वस्तु में ही सम्भव है, फिर इस अंशांशीभाव की व्यवस्था के तारतम्य का क्या कारण? क्यों कि महावराहपुराण में सभी अवतारों को नित्य, पूर्ण, सर्वगुणयुक्त एवं सर्वदोषविवर्जित कहा गया है।

उत्तर– श्रीरूपगोस्वामिकृत – 'लघुभागवतामृत' में अवतारों के तारतम्य के विषय में **'शक्तेर्व्यक्तिस्तथाऽव्यक्तिस्तारतम्यस्य कारणम्'** यही कारिका दिखायी है, जिसका अर्थ है—'शक्ति की अभिव्यक्ति और अनभिव्यक्ति ही तारतम्य का कारण है।' इस विषय में यही दृष्टान्त बताया है कि ग्राम, एवं नगर आदि के दाह के विषय में दीपक एवं अग्निपुञ्ज की शक्ति यद्यपि समान ही है तथापि शीत आदि की पीड़ा को क्षीण कर देने के कारण सुख तो अग्नि के पुञ्ज से ही हो सकता है। अतः अन्य अवतारों में समस्त शक्तियों का प्रकाश नहीं हो पाया है और श्रीकृष्ण में सभी शक्तियाँ प्रकट हो गयी हैं, यही तारतम्य का कारण है। गर्गसंहिता में कहा है कि—

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि।
एक–कार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह॥

स्वयं परिपूर्णतम तो भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि श्रीकृष्ण ने एक कार्य के लिये अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्यों का सम्पादन किया है। अतः चिन्मय परमेश्वर में अंशांशीभाव का भेद विरुद्ध नहीं है।

आलस्यादप्रवृत्तिः स्यात् पुंसां यल्लेखविस्तरे।
इति मत्वैव संक्षेपाद् विषयः प्रतिपादितः॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु!

श्रीहितहरिवंश-महाप्रभोरष्टोत्तरपञ्चशततमे प्राकट्य-महोत्सवे दीयमानं "अभिनन्दन-पत्रम्" वि० सं० २०३८ वै० शु० ११

हितस्य प्राकटच-महोत्सवेस्मिन्, हितप्रदे सर्वजनस्य सम्यक् ।
समागता ये मथुरा-पुरीतो, वृन्दावनाद् ये च महानुभावाः ।।१।।

ये वाऽन्यतश्चैव समागताः स्युः, सुस्वागतं सर्व-जनस्य कुर्वे ।
या मातरश्चैव तथा भगिन्य-, स्तासामपि स्वागतमेव कुर्वे ।।२।।

येषामहं वेद्मि न नामधेयं, न रूपधेयं न च भागधेयम् ।
समागता ये पुरुष-प्रधानाः, सर्वानहं तानपि पूजयामि ।।३।।

स जयति हितहरिवंशो, वंशो येनैव श्रीहरेरपि च ।
हितविधिपूर्वमपूर्वं, संसारेऽस्मिन्नपूर्वतां यातः ।।४।।

स जयति राधावल्लभ, उत्तमपुरुषस्य यस्य सत्कृपया ।
हितहरिवंश-सुवंशः, सर्वत्र वाऽऽशु कीतिमायातः ।।५।।

रसावतारो जयतादजस्रं, महाप्रभुः श्रीहरिवंशनामा ।
नामापि यस्याऽऽशु सुकीर्तितं सत्, सद्वंशतां यापयतीह जीवम् ।।६।।

श्रीकृष्ण-वंशी हरिवंशनाम्ना, रसावताराय मुदाऽवतीर्णा ।
समुज्ज्वलं चोज्ज्वलतां नयन्ती, प्रधानतां तस्य च दर्शयन्ती ।।७।।

गोस्वामिनः श्रीहरिवंशनाम्नो, भक्तेः सुरीतिं नहि कोऽपि वेत्तुम् ।
क्षमो हरेरन्तिक एव राधां, प्रधान-भावेन हि यः सिषेवे ।।८।।

जिह्वा मे तव नामकीर्तनमलं नेत्रद्वयं दर्शनं
कुर्यादङ्घ्रियुगं परिक्रमणकं हस्तद्वयं प्रार्चनम् ।
चेतोऽङ्घ्रि-स्मरणं यशः श्रवणकं कर्णौ च कं वन्दनं
राधावल्लभ ! पादपल्लवतले ते यातु मे जीवनम् ।।९।।

अभिनन्दति रतिपूर्वं, सर्वानत्रागतान् विदुषः ।
श्रीवृन्दावनवासी, शास्त्री वनमालिदासाख्यः ।।१०।।

श्रीमद्भागवत में गोपियों के नाम निर्देश न करने का कारण

सर्वं रहस्यं कृष्णस्य प्रोक्तवान् नारदः पुरा।
वेदव्यासाय विविधान् राधिकाकृष्णयोर्गुणान्॥
गोपयित्वा ततो व्यासः पुराणादिषु केवलम्।
कृष्णलीलां निजगाद न राधासंश्रितां कथाम्॥
नो नः कथा वद सदःस्विति तन्निषिद्धोऽ-
प्यानन्दनिघन इह तावदवोचमेव।
नामानि तु प्रथयितास्मि कदापि नासा-
मित्थं मुनिर्मनसि संप्रति निश्चिकाय॥
—इति श्रीकृष्णकमलतंत्रे लिखितम्

(भा० १०. ३२. ८. तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण० टीका सारार्थदर्शिनी)

श्रीवृन्दावन की महिमा का कवित्त

वृन्दावनधाम! तेरी महिमा को कौन कहे
तेरे जो विहारी जू हैं वे हू याते हारे हैं।
वे ही वनमाली जाकी लीला है निराली अहो!
ते हू बहुबार आप मन में विचारे हैं॥
तेरे तृण फलन को आस्वाद लेन हेतु
स्वयं वत्स ग्वालबाल बनिके पधारे हैं।
ब्रह्ममोह लीला में ये भाव सो दिखाय दियो
याते 'वनमालिदास' तो ही पै जू वारे हैं॥

'दुःसहा बहु-सन्ततिः" इति समस्यापूर्तिः
वस्तूनामतिमूल्यत्वात् स्वभावानाममेलनात्।
स्वोदरस्याप्यपूर्यत्वाद् दुःसहा बहुसन्ततिः॥

मुद्रकः—राजू प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा गेट, वृन्दावन